प्रस्तावना

इण्डियन प्रेस के अनुरोध से इण्टरमीडियेट के लिए मुझे एक गद्य-सङ्कलन प्रस्तुत करना पड़ा। उस गद्य-सङ्कलन के भूमिका रूप में मुझे हिन्दी-गद्य के इतिहास, हिन्दी की प्रचलित शैलियों का परिचय तथा हिन्दी की वर्तमान प्रवृत्तियों की चरचा करनी पड़ी। उसी भूमिका का नाम 'गद्य-गाथा' रक्खा गया था। लिखते-लिखते भूमिका इतनी बढ़ गयी कि इण्डियन प्रेस के लिए मुझे उसको संक्षिप्त करना पड़ा। इण्टरमीडियेट के सङ्कलन में जो "गद्य-गाथा" का रूप निकला है, वह मूल का अधिक से अधिक तृतीयांश होगा। इस भूमिका को देखकर मेरे मित्रों ने आग्रह किया कि मैं उस लिखी हुई सम्पूर्ण 'गद्य-गाथा' का प्रकाश प्रथक पुस्तक के रूप में करूँ। अतएव प्रस्तुत पुस्तक वही पुरानी लिखी हुई 'गद्य-गाथा' का कुछ बढ़ाया-घटाया रूप है।

समीक्षा-कार्य बड़ा कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ कर मुझे विश्वास है कि मेरे कुछ मित्र अकारण ही रुष्ट हो जायेंगे। बहुत सम्भव है कि कुछ अच्छे लेखकों के नाम और उनकी कृतियों की चरचा रह गयी हो। यह भी सम्भव है कि कुछ ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिन्हें लोग साधारणतः लेखक समझते हैं आवश्यकता से अधिक विस्तार और प्रशंसा इस पुस्तक में मिले। जो बातें छूट गयी हैं उनका समावेश आगे संस्करण में कर दिया जायगा। परन्तु अन्य सब विचारों का जो इस पुस्तक में व्यक्त किये गये हैं सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मैंने यथाशक्य उज्वल समीक्षावृत्ति और निष्पक्ष विवेक को ही समक्ष रक्खा है। किसी प्रकार के राग-द्वेष की प्रेरणा से काम नहीं लिया गया है। फिर भी यदि इस पुस्तक के कुछ स्थल किसी को किसी कारण न रुचें तो इसमें अधि

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

हिन्दी-गद्य-गाथा

साहित्य 'साहित्यिक' नहीं होता

लक्षण ग्रन्थकारों ने कविता को 'साहित्यिक' बनाने के लिए जिन उपादानों की सृष्टि की है वे साहित्य के प्राण नहीं हैं। 'साहित्यिकता' के विलासी साहित्य के मर्म को नहीं जानते। वे मूल के स्थान में दल और देवता के स्थान में मूर्ति की स्थापना करते हैं। कभी कभी तो 'साहित्यिकता' के बोझ से दब कर साहित्य पिस जाता है। यह बात भारतीय काव्य-विधान की ही नहीं है, वरन पाश्चात्य देशों में भी कुछ अधिक-कम देखने में आती है। हाँ, वहाँ के लोग इनकी निस्सारता बहुत बाद में समझ पाये और फलस्वरूप से आज दिन भी 'साहित्यिकता' के असली मूल्य का ओर नहीं पाये हैं परन्तु पश्चिम बहुत शीघ्र समझ गया [illegible] अब 'साहित्यिकता' का आडम्बर ही पलट रहा है। उसकी परिभाषा बदल रहा है। आज की साहित्यिक जीवन एक भारतवर्ष को छोड़ कर और [illegible] प्राचीन साहित्यिक रूप-रेखा के बिलकुल प्रतिकूल है। वह गद्य के निकट पहुँच गयी है नीरसता कवित्वहीनता के कारण नहीं वरन उन सब प्रतिबन्धों को उखाड़ फेंकने के कारण जो 'साहित्यिकता' के नाम पर गद्य और पद्य के बीच में खड़े थे। यह एक बात समझ लेना होगा कि अच्छे साहित्य के लिए चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य एक मानसिक विकास की आवश्यकता है। गद्य-पद्य का रूप एक है। उसके लिए उतना ही विलम्ब है जितना मनुष्य को पूर्ण-मनुष्य हो जाने में लगी है।

स्वरूप का सङ्केत, जिसकी ऊपर चर्चा की गयी है, अभी नहीं मिलता। पशु-स्वरूप में तो जीव राग-मय होता ही है, परन्तु विकास के सोपान में 'मनुष्य' की परिस्थिति तक पहुँच कर, प्राणी चिन्तना की चिनगारी को जितना ही फूँक-फूँक कर उद्दीप्त करता है, उतना ही अधिक उन्नत होता जाता है। यहाँ तक कि उसे अपनी भावना-शक्ति को नियन्त्रित, अनुशासित और परिमार्जित करते करते चिन्तन-शक्ति की सजगता के अधीन करना पड़ता है। होते होते चिन्तना-शक्ति ही केवल भावनिधि की वस्तु रह जाती है और मनुष्य अपने पूर्ण स्वरूप में आकर टिकता है।

साहित्य में पद्य की प्राचीनता

हम देखते हैं कि विश्व में जहाँ कहीं भी साहित्य संरचित है, सबसे पहले पद्य के ही स्वरूप दिखायी देते हैं गद्य के नहीं। यह क्यों? यह इसलिए नहीं कि मनुष्य पर सङ्गीत का प्रभाव बहुत पुराना है और सङ्गीत का अनुशासन मानना सभ्यता का चिह्न है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक देश के साहित्य के आदि-युग में मनुष्य गद्य-प्रधान युग की अपेक्षा कम सभ्य थे। भावमय रागमय, भड़भड़मय परिस्थिति में पले हुए व्यक्ति अनिवार्य रूप से पद्य-मय होते होंगे। सम्भव है कि इन आदिम कृतियों में भी चिन्तन की सामग्री हो और इससे उनके विकास और उनकी सभ्यता के ऊँचा मोल आँका जा सके परन्तु एक बात निश्चय ही थी कि अक्षर-विधान का उनका अभिव्यञ्जन पद्य और अधिक सङ्गीत के रूप में उनकी चिन्तन की उन्नति की उलटी गङ्गा बहाता था। वर्ष दो वर्ष के बच्चों के समक्ष माता जो मन में आता है गाती है इधर-उधर के [illegible] टन बजाती है और बच्चों को यह सब बहुत अच्छा लगता है। परन्तु बच्चे की सङ्गीत-प्रियता का न तो यह अर्थ है कि विश्व में सङ्गीत-कला का सार्वभौमिक प्रभाव है और न यह अर्थ है कि बच्चे की समझ अथवा सभ्यता इतनी सजग होती है कि वह गाता

भरमार संस्कृत रूपकों में देखने में आती है। कुछ नाटक तो ऐसे हैं जिनमें गद्य भाग से पद्य भाग कहीं अधिक है, और गद्य में सरलता से लिखे जानेवाले इतिवृत्तात्मक स्थलों को भी तुकबन्दियों में बाँध दिया गया है। आज-कल भी पिङ्गलों की भाँति यह दोष नाटकों में वर्तमान रहता है।

प्राचीन काल में स्मरण-शक्ति बड़ी प्रबल थी, अतएव शास्त्रों का बहुत कुछ स्वरूप लिपि-बद्ध कभी नहीं हुआ। गद्य कैसे दिखायी देता। शासन-सम्बन्धिनी आज्ञाओं का उल्लेख कहीं-कहीं थोड़ी-सी पंक्तियों में—उदाहरण के रूप में दिखायी देता है। आने-जाने की सुविधाएँ न थीं। रेल तार और डाक-घर न थे। पत्रों को कैसे भेजा जाता? छापेखानों की अनुपस्थिति में पुस्तकों की प्रतिलिपि करना उतना ही दुस्साध्य था जितना गौरीशङ्कर पर चढ़ना। सभ्यता का जो कुछ विकास हुआ था वह भावना के कठघरे में बन्द था, और छन्दों के रूप में ही निर्मित हुआ था।

ये सब भाषाओं के पक्ष में प्रतिबन्ध थे परन्तु प्रत्येक भाषा के लिये अपने निजी कारण भी हैं। हिन्दी भाषा का विकास अभी तक

हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य की प्राचीनता

[illegible] से माना गया है [illegible] तक के [illegible] इतिहासकारों का यही मत है परन्तु पुरातत्त्व के [illegible] विद्वान [illegible] सांकृत्यायन ने अपनी नवीन [illegible] का पता कर लिया है [illegible] ने [illegible] कवि [illegible] हिन्दी की [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] सिद्धों [illegible] [illegible] ने [illegible] कवि [illegible] निकाला है जो [illegible] से लेकर बारह सौ तक के बीच में हुए हैं [illegible] का उल्लेख करते हुए [illegible]

ही सिद्धों के रूप में भारतीय भावना को प्रवाहित करता आया है। कबीर ने इस सम्प्रदाय को अपने व्यक्तित्व के आलोक में और सङ्गठित किया। यह क्रम घटता-बढ़ता परिवर्तित होता नाथों के समय तक चला आया। बहुत से प्रतिभा सम्पन्न साधु समय समय पर स्वतन्त्र होकर अपनी निजी स्फूर्ति और प्रेरणा से इसमें नये नये परिवर्तन करते आये। वर्तमान युग का राधास्वामी सम्प्रदाय इसी साधु सम्प्रदाय का सब से अर्वाचीन स्वरूप है।

राहुल जी ने जिन सिद्ध कवियों का उल्लेख करके हिन्दी की उत्पत्ति-तिथि को आगे बढ़ाया है उनके नाम ये हैं :—

१ सरहपा २ शबरपा ३ आर्यदेव या कर्णरीपा ४ लूहिपाद ५ भूसुकु ६ वीणापा ७ विरूपा ८ दारिकपा ९ डोम्भिपा १० कम्बलपाद ११ जालंधरपाद १२ कुक्कुरिपा १३ गुण्डरीपाद १४ मनिया १५ कण्हपा १६ तांतिपा १७ महीपा १८ भादेपा १९ कङ्कणपाद २० जयानन्त २१ तिलोपा २२ नाड़ (नारो) पा २३ शान्तिपा—इन सबका पूर्ण परिचय और इनकी कृतियों की समीक्षा राहुल जी ने की है। हमारा यहाँ केवल गद्य से ही सम्बन्ध है अतएव यह प्रसङ्ग अनावश्यक समझ कर यहीं समाप्त किया जाता है। राहुल जी का मत अब हिन्दी साहित्य के इतिहास में हेरफेर अवश्य करेगा। पुरातत्त्व के दूसरे विद्वान श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने राहुल जी की शोध की प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है। हम इस विषय की अधिक चर्चा यहाँ नहीं करते हैं। भारतवर्ष की भाषाओं की विकास धारा से कितनी शाखायें फूटीं कब कब फूटीं और इनके क्या क्या नाम पड़े इसका उत्तर हमें हिन्दी भाषा के इतिहास और भाषा-विज्ञान की ओर ले जायगा परन्तु जिस शाखा-विशेष का हिन्दी नाम दिया गया उसके स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा का पहला शङ्खनाद पद्य के रूप में था गद्य में नहीं। बाद में कितने ही सुन्दर काव्य रचे गये, परन्तु सब पद्य में। यह क्रम १७ वीं शताब्दी तक जारी रहा।

यह बात निर्विवाद है कि किसी राष्ट्र अथवा युग के साहित्य की आत्मा से परिचय प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु प्राय सदैव उसके काव्य के उपवन मे पदार्पण करते चले आये हैं।

साहित्य में गद्य का महत्व

कविता का अञ्चल पकडकर वे साहित्य की महत्ता से साक्षात्कार करते रहे है और ज्ञानकोष के पद्यात्मक अश से प्रभावित होकर उन्होने साहित्य के मूल्य को आँका है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि जनसाधारण मे प्रचलित विचार-विनिमय के साधन, अर्थात गद्य का, साहित्य के सृजनोपांग मे कोई अश ही नहीं रहता। अपने नित्य-प्रति के सम्भाषणो मे जिस कथन प्रणाली को आधार बनाकर हम अपने हृदगतभाव, शोक, हर्ष, रोष आदि प्रकट करते हैं; जिसे सभी आबाल-वृद्ध, स्त्री, पुरुष, समान रूप से व्यवहार मे लाते हैं, उसकी उपादेयता कविता अथवा पद्य के सम्मुख नगण्य नहीं है। आधुनिक समाज में, जब कि शिक्षा, संस्कृति और साहित्य का विकसित और प्रौढ स्वरूप हमारे सम्मुख है, हम देखते हैं कि पद्य ही साहित्य के श्रृङ्गार का एक मात्र साधन नहीं है। इस वैज्ञानिक युग मे तार्किकता के प्रति ज्ञानार्जन अनिवार्य-सा हो रहा है। ज्ञान के विविध स्वरूप और विचित्र तंत्रों की ऊहापोह अब हमारा अभीष्ट रहता है। नित्यप्रति जनता मे नव्य विषयों की लगन वृद्धि होती जाती है ऐसी स्थिति मे साहित्य सरोवर मे जल-विहार करने के हेतु हम पद्य की एक ही डोंगी के सहारे अपनी जीवन-नौका [illegible] दूर तक नहीं पहुँचा सकते।

हम अपने [illegible] जीवन मे अपने आलाप-सम्भाषण और वाद-विवाद मे सदैव ही गद्यात्मकता मे लिप्त रहते हैं। स्वयं जीवन [illegible] के अवसर [illegible] और [illegible] कभी कभी मिलता है। यह कारण है कि हमारा ज्ञान और प्रेम भी आधारभूत विचारात्मक [illegible] शुद्ध अनुभव और तर्कवादिता मे सन्निहित है। जीवन के [illegible] स्वाभाविक रूप है उसमे कविता का बहुत कम अश है।

गद्य हमारे लिए वागडोर है, इसका महत्त्व सर्वतोमुखी है।

किसी भी जाति के बौधिक विकास की कसौटी उसकी वैज्ञानिक उन्नति होती है। विभिन्न कलाओं का विकास, उद्योग-धन्धों की प्रचुरता, सामाजिक उन्नति आदि से ही राष्ट्र शिक्षित कहा जाता है। अतएव हमारे मानसिक स्फुरण में गद्य की महत्ता और उपादेयता सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त स्वतः साहित्य के भी अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पद्य की पहुँच नहीं, और यदि ऐसे स्थलों में पद्य अपना पैर रोपता है तो यह उसकी हिमाकत और लेखकों की उद्दण्डता ही समझना चाहिए। पदार्थ विज्ञान, समाज-विज्ञान, चिकित्सा, कानून, अर्थ, राजनीति आदि तथा अन्यान्य उपयोगी कलाओं का विवेचन यदि पद्यबद्ध सम्मुख आये तो हास्यास्पद और अनुचित होगा। इस सम्बन्ध में हमें संस्कृत लेखकों की भूल का स्मरण हो आता है जिन्होंने ज्योतिष, तर्क, मीमांसा आदि को पद्य-बद्ध किया था। उनका यह प्रयास अपने समय की समाज-गत रुचि को देखते हुए भले ही युक्तिसङ्गत कहा जा सके किन्तु यह स्वाभाविक है कि केवल पद्य से होकर [illegible] तक [illegible] आदि का प्रचार और प्रसार जनसाधारण [illegible] नहीं [illegible] सकता [illegible] शिक्षित राष्ट्र का निर्माण [illegible] के [illegible] ही [illegible] स्पष्ट है [illegible] नव-जीवन [illegible] है [illegible] आवश्यक [illegible] का [illegible] है

कारण भी हैं। समाज-शास्त्र और सभ्यता का इतिहास इस बात का द्योतक है कि आदिकाल मे, जब मनुष्य ने कोई उल्लेखनीय सामाजिक दृढ़ता न अङ्गीकार की थी, हमारी आवश्यकताएँ न्यून थी। जीवन एक सङ्घर्ष न था और सन्तोष सहज-प्राप्त था। तत्वचिन्तन के स्थान पर आत्मगत-भावोद्वेगो के नैसर्गिक अभिव्यञ्जन मे ही सुख की उपलब्धि थी, तथा ज्ञान का भण्डार परिमित था। साहित्य का प्राथमिक स्वरूप ऐसी स्थित मे व्यञ्जनात्मक हुआ। उसमे विश्लेषण अथवा आलोचना का कोई अश न होने से भाषा का आरम्भ अधिकतर कविता से होता है।

गद्य के आविर्भूत होने मे विलम्ब होने का कारण उन समय की देश की शासन-व्यवस्था अथवा अल्पावस्था से उत्पन्न मनुष्य के जीवन का अस्त-व्यस्त और आपदाकुल होना भी है। आक्रमण, युद्ध और पलायन नित्य की घटनाएँ थी। किसी विषय के गूढ़ चिन्तन का किसी को अवकाश न था तथा शान्त वातावरण मे कुछ दिनों रह कर किसी विधेयात्मक साहित्य का प्रणयन करना एक दुस्तर कार्य था। धर्म अथवा युद्ध ही ऐसे विषय थे जिनमे समाज की रुचि आकृष्ट होती थी। इस कारण भी धर्म-प्राण संस्कृत-साहित्य का सम्मान पद्य की ओर ही रहा। समाज का ज्ञान-कोष बहुविषयक न था और न बहुल गहन ही। उस समय एक प्रथा-सी थी, वर्णित विषय को सक्षेप मे कहने की और ऐसे ढङ्ग मे कहने की कि वह जनरव बन जाय। विषय के पद्यात्मक अश को स्मरण रखना गद्य की अपेक्षा कुछ सरल होता भी है, तथा आशय को सक्षेप मे स्पष्ट कर देने की पद्य मे कुछ अद्भुत क्षमता होती है। सम्भवत पद्य के प्रसार का यह भी एक प्रयोजन रहा है।

हमारा सामाजिक जीवन जब तक पार्थिवतापूर्ण नहीं होने पाता वह कविता का कानन रहता है। सभ्यता के मण्डप के नीचे जब तक ससार नहीं आया था, उसकी मानसिक अवस्था दुनियादारी से दूर

थी। तब हमारी व्यावहारिक बुद्धि में न अधिक वेग आया था, न विशेष प्रबलता ही दिखायी देती थी। सरल जीवन और अमल-धवल मानस के मध्य में वे दिवस काव्योचित वातावरण के विधायक थे। वायु में अन्तर की स्वर-लहरी निनादित रहती थी। अतः उस समय तक गद्य की आवश्यकता अथवा उपयोगिता कोसों दूर थी। इसका कुछ ऐसा प्रभाव हुआ कि पद्य रचना की एक दीर्घकाल-व्यापी परम्परा-सी बह चली। जब संस्कृत के आधार पर अपभ्रंश भाषाओं में साहित्य का सृजन होने लगा तब भी पद्य ही विषय-प्रकाशन का प्रचलित साधन था।

\+ \+ \+ — —

संस्कृत का साहित्य-कोष यद्यपि पर्याप्त मात्रा में गद्यमय था, किन्तु संस्कृत प्रचलित व्यवहारिक बातचीत का माध्यम न थी। लोगों में इसे पढ़ने का धैर्य न था। वे इससे उदासीन थे। अपनी प्रचलित भाषा में पाठ्य-पुस्तकों की पद्यात्मक शैली उन्हें प्रिय थी किन्तु संस्कृत विद्वानों के गद्य से वे डरते थे। दण्डी, बाण और हर्ष प्रभृति संस्कृत के [illegible] जैसा गद्य लिखते थे वह था भी अत्यधिक अलङ्कारिक और आडम्बर पूर्ण। इनके गद्य का आधार पद्य का [illegible]

मुसलमानों की राजकीय सत्ता के छिन्न होते ही उत्तर और दक्षिण दोनों ही ओर से आक्रमण होने लगे और दिल्ली का शासन डगमगाने लगा। अहमदशाह दुर्रानी और मरहठों के आघातों से बचने के लिए दिल्ली और आगरा का वैभव खिसक कर बङ्गाल और बिहार में जा टिका। इन मुसलमानों के साथ खड़ी बोली बहुत शीघ्र सुदूर पूर्व तक व्याप्त हो गयी। इन्हीं दिनों अङ्गरेजों की भी बङ्गाल में प्रभुता और प्रधानता बढ़ रही थी। भारत और भारतीयों के जीवन में अङ्गरेजों ने ज्यों ज्यों अपने अधिकारों का क्षेत्र-विस्तृत किया, एक वैज्ञानिक युगान्तर घटित होता गया। एक ओर वाणिज्य और व्यापार का विकास दृष्टिगत होता था, दूसरी ओर आवागमन के विभिन्न नवीन साधनों की उत्पत्ति होती जाती थी। मुद्रण-कला का प्रचार सम्यक रूप से हो ही चला था, अत. समाज में शिक्षित समुदाय की वृद्धि हुई और गद्य-साहित्य की खपत होना अधिकाधिक सम्भव हो गया। अब भारतीय जनता विभिन्न वैज्ञानिक विषयों से उत्तरोत्तर परिचित हो रही थी। समाज-शास्त्र, राजनीति, न्याय, अर्थ-शास्त्र चिकित्सा-शास्त्र आदि विषयों की पुस्तकों की आवश्यकता स्पष्टतर हुई।

साथ ही रेल, तार, डाकखानों आदि ने हमारे रहन-सहन आचार-विचार में परिवर्तन पैदा कर दिया। इस नवीन युग के [illegible] नवीन मण्डल में लोगों की साहित्यिक रुचि में [illegible] होना स्वाभाविक था। लेखकों में पूर्वकालिक [illegible]-काव्य के [illegible] [illegible] एवं उपेक्षा के भाव [illegible] और क्रमशः [illegible] के [illegible] स्वरूप को [illegible] [illegible] लगा।

इस समय समाज के प्रत्येक अंग में [illegible] साहित्य के लिए गद्य अपेक्षित था। अङ्गरेजों को भी [illegible] परिचय प्रदान करने के लिए [illegible] की [illegible] ईसाईमत के प्रचार में भी खड़ी बोली ही उपयुक्त [illegible]। इस प्रकार खड़ी बोली सरल और [illegible] होने के कारण मुसलमानों

के पथ को हिन्दी के आदि युग में प्रशस्त और आलोकपूर्ण बनाया।

इन लेखकों की शैली में यद्यपि परस्पर गहरी भिन्नता थी, किन्तु वह अपने काल का यथार्थ दर्पण होने के कारण देश के परम्परागत साहित्य में ग्रहण कर ली गयी। मुंशी सदासुख लाल द्वारा निर्मित गद्य हमारे गद्य के विकास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार है। इनके द्वारा किये गये हिन्दी के साहित्यिक प्रयोग से गद्य का एक नियमित रूप से आरम्भ हुआ।

सदासुख लाल 'नियाज़'

सदासुख लाल 'नियाज़' दिल्ली निवासी थे। इनका जन्म सम्वत् १८०३ में हुआ था। आप फ़ारसी के विद्वान ग्रन्थकार तथा शायर थे। अपनी प्रौढ़ावस्था में ये कम्पनी की अधीनता में एक अच्छे पद पर नियुक्त हुए। ६५ वर्ष की अवस्था में आपने कम्पनी की नौकरी छोड़ दी और प्रयाग में आकर अपनी शेष आयु भगवद्भजन में व्यतीत करने लगे। इनका परलोक-वास ७८ वर्ष की आयु में हुआ। आपका प्रामाणिक गद्य—'सुख-सागर' में मिलता है। यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का स्वतन्त्र अनुवाद है।

अभी तक खड़ी बोली में उर्दू का साम्राज्य था। शिक्षित-वर्ग के 'शिष्ट' वार्तालाप का [illegible] था। परन्तु इन्होंने पण्डितों और कथा-वाचकों की प्रचलित भाषा में संस्कृत के [illegible] लगा [illegible] भाषा के [illegible] मनुष्य भी [illegible] शिक्षित [illegible] भाषा का अपना अनुवाद [illegible] किया। आपकी हिन्दी [illegible] साथ संस्कृत के [illegible] प्रकार हिन्दुओं का [illegible] शिष्ट बोलचाल की भाषा [illegible] लेकर सुखसागर एवं [illegible] प्रचलित थी। अपने [illegible]

नहीं होता है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि इस समय भाषा में व्यञ्जना-शक्ति का समुचित प्रादुर्भाव नहीं हो पाता है, तथा उसमें तथ्य की विवेचना के लिए अपेक्षित भाव प्रकाशन का बल भी उचित परिमाण में जागृत नहीं हो पाता। अतः मनोविनोद अथवा किसी धर्म-भावना की परिपुष्टि, जिसमें लोक-रुचि स्वत खिंची रहती है, साहित्य का एक ऐसा आधार रह जाता है जिसके द्वारा समाज की रुचि पठन-पाठन के प्रति आकर्षित होती है। अतः इंशाअल्ला खाँ का कहानी लेकर आना स्वाभाविक ही था।

इंशाअल्ला ख़ाँ

इंशा ने अपनी "रानी केतकी की कहानी" सम्वत् १८५५ और १८६० के अन्तर्गत लिखी। आप दिल्ली के निवासी थे। राज-दरबार में इनके पिता का यथेष्ट सम्मान था। इनका बचपन बड़ा सरल और प्रमोदमय रहा। आरम्भ में इन्होंने कविता लिखना शुरू की। [illegible] में बादशाह शाहआलम ने इनकी शायरी को प्रशंसायुक्त उत्तेजना दी। गदर के बाद आप लखनऊ चले आये। यहाँ इनकी रँगीली तबियत में चञ्चलता प्रस्फुटित हुआ करती थी। ये उर्दू-फारसी के मर्मज्ञ और कवि थे। आपने सङ्कल्प किया कि एक ऐसी कहानी लिखी जाय जिसमें 'हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न मिले'। वह बाहर की बोली और गँवारी न कुछ हिन्दवी भाषा में हो। आपकी कहानी [illegible] मौलिक है [illegible] अथवा आख्यान पर आधारित नहीं। न इनके [illegible] प्रेरणा ही थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस कहानी की [illegible] आश्चर्यजनक हिन्दीपन है। भाषा की चुलबुलाहट और [illegible] मुहाविरेबन्दी और अनुप्रास [illegible] की कथा-[illegible] आदि पर इनकी अपनी छाप लगी है।

इंशाअल्ला खाँ की भाषा-शैली में उर्दू का प्रभाव है। यह इनके मुसलमानीपन का लक्षण है। वास्तव में रानी केतकी की कहानी

प्रतापनारायण मिश्र की भाषा में जो प्रवाह और जिन्दादिली देख पड़ी वह बहुत कुछ इंशा साहब की सरिता का एक स्रोत है।

उपरोक्त कथन का यह आशय नहीं कि इंशाअल्ला खाँ का गद्य सर्वथा दोषरहित है। उनका "आतियाँ" 'जातियाँ' का प्रयोग दूषित तथा पुरानी परित्यक्त परिपाटी का है। 'घरवालियाँ' 'वहलातियाँ' आदि शब्दों का उद्भूपन बहुत ही निम्नकोटि का है। इसके अतिरिक्त आपकी शैली में बौद्धिकता अथवा मननशीलता का कोई स्थान न होना उसका एकाङ्गीपन प्रदर्शित करता है।

हिन्दी गद्य के उन्नायकों में इंशा साहब के समकक्षी सदल मिश्र का पद बहुत ऊँचा और प्रतिष्ठित है। आपने कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के अध्यक्ष जान गिलक्रिस्ट के आदेश से खड़ी बोली में 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा।

सदल मिश्र

इस ग्रन्थ की भाषा बोल-चाल का व्यावहारिक रूप है। इस सीधी-सादी शैली में आपने लल्लूलाल जी की तरह शब्दों का रूप विकृत नहीं होने दिया। न आपकी वाक्य-योजना में पद्यात्मक भाषा के अनुरूप पद-विन्यास ही है। इसके स्थान पर मुहाविरेबन्दी और दोहरे पदों के प्रयोग से शैली में यथेष्टस्फूर्ति आ गयी है। आपका शब्द-भाण्डार अत्यधिक चलताऊ ढङ्ग का है। भाषा को सँवारने का प्रयास आप में बहुत कम मिलता है तथा स्थान स्थान पर पूर्वी बोली के समावेश में स्वच्छता की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया है हाँ उर्दू के ढङ्ग के मुहाविरों के प्रयोग में यह नवीनता का भाव अवश्य है। आपकी शैली यद्यपि फारसी और अरबी के प्रभाव से बिल्कुल अछूती नहीं है फिर भी लल्लूलाल की भाँति यह पण्डिताऊपन लिये है। गद्यालोचकों के मत में मिश्रजी की भाषा परिमार्जित नहीं है। वस्तुतः आपकी हिन्दी की गति स्वच्छन्द है आपने भी इंशा साहब की भाँति वाक्य निर्माण में शब्दों का उलट-फेर किया है यथा—'जल विहार हैं करते' 'उदय हो हुआ है चन्द्र'। और के

प्रतापनारायण मिश्र की भाषा में जो प्रवाह और जिन्दादिली देख पड़ी वह बहुत कुछ इशा साहब की सरिता का एक स्रोत है।

उपरोक्त कथन का यह आशय नही कि इंशाअल्ला खाँ का गद्य सर्वथा दोषरहित है। उनका "आतियाँ" 'जातियाँ' का प्रयोग दूषित था पुरानी परित्यक्त परिपाटी का है। 'घरवालियाँ' 'बहलातियाँ' आदि शब्दो का उर्दूपन बहुत ही निम्नकोटि का है। इसके अतिरिक्त आपकी शैली में बौद्धिकता अथवा मननशीलता का कोई स्थान न होना उसका एकाङ्गीपन प्रदर्शित करता है।

हिन्दी गद्य के उन्नायकों ने इशा साहब के समकक्ष सदल मिश्र का पद बहुत ऊँचा और प्रतिष्ठित है। आपने कलकत्ते के फोर्ट विलियम

सदल मिश्र

कालेज के अध्यक्ष जान गिलक्रिस्ट के आदेश से खड़ी बोली में 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इस ग्रन्थ की भाषा बोल-चाल का व्यावहारिक रूप है। इस सीधी-सादी शैली मे आपने लल्लूलाल जी की तरह शब्दों का रूप विकृत नही होने दिया। न आपकी वाक्य-योजना मे पद्यात्मक भाषा के अनुरूप पद-विन्यास ही है। इसके स्थान पर मुहाविरेबन्दी और दोहरे पदो के प्रयोग से शैली मे यथेष्टस्फूर्ति आ गयी है। आपका शब्द-भाण्डार अत्यधिक चलताऊ ढङ्ग का है। भाषा को सँवारने का प्रयास आप मे बहुत कम मिलता है तथा स्थान स्थान पर पूर्वी बोली के समावेश से स्वच्छता की ओर भी ध्यान नही दिया गया है। हाँ, उर्दू के ढङ्ग के मुहाविरों के प्रयोग से यह नवीनता की ओर अग्रसर है। आपकी शैली यद्यपि फारसी और अरबी के प्रभाव से बिल्कुल अछूती नही है फिर भी सदासुखलाल की भाँति यह पण्डिताऊपन लिये है। गद्यालोचकों के मत से [illegible] का [illegible] नहीं है। वस्तुतः आपकी हिन्दी की गति स्वच्छन्द है [illegible] भी इंशा साहब की भाँति वाक्य निर्माण मे शब्दों का उलट-फेर किया है यथा—जल विहार है करते, 'सुख ही हुआ है स्वच्छ' और के

कालेज में जान गिलक्रिस्ट साहब की अधीनता में रह कर अङ्गरेज कर्मचारियों को भारतीय भाषा का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इस गद्य-ग्रन्थ का प्रणयन किया था। प्रेमसागर की भाषा इस बात की परिचायक है कि उस समय तक साहित्यमें गद्य पद्य के प्रभाव से मुक्त न हो पाया था। पुस्तक की भाषा खड़ी बोली होने पर भी इसमें ब्रजभाषा का प्राधान्य परिलक्षित है। सम्भवतः लेखक के आगरा निवासी होने के कारण इसमें ब्रज की प्रबलता है। इसके अतिरिक्त आप उर्दू के प्रभाव से बचना चाहते थे। अतएव आपकी शैली सदलमिश्र की भाँति चलताऊ और व्यावहारिक नहीं है। उर्दू से मुक्त और ब्रज तथा संस्कृत-मिश्रित खड़ी बोली की अपनी एक शैली की उद्भावना करने में, आपने भाषा आडम्बरपूर्ण और अस्वाभाविक बना दी।

इनकी वाक्यरचना में पारस्परिक तल्लीनता न होने से भाषा के प्रवाह में स्थिरता नहीं लायी जा सकी। वास्तव में आपकी भाषा बहुत कुछ गोकुलनाथ आदि की प्राचीन शैली की ओर झुकती हुई है। किन्तु स्थान-स्थान पर तुकबन्दी, अनुप्रास तथा वाक्यों के यथेष्ट बड़े होने से वह पुरानी बदरता नहीं रहने पायी है। गठी हुई होने पर भी इसमें [illegible] है और वह [illegible] है। 'प्रेम सागर' की भाषा कथा-वार्ता और पण्डिताऊ ढंग पर है। यही कारण है कि इसमें मुहाविरों का प्रयोग एवं अन्य किसी प्रकार का भाव-सौष्ठव बहुत कम [illegible] पाया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में लल्लूलाल की भाषा कृष्णोपासक व्यासों की सी ब्रजरंजित [illegible] है। [illegible] का [illegible] प्रेमसागर से उद्धृत है

स्थान में 'औ' तथा 'श्रौ' दोनों का प्रयोग है। बहुवचन प्रयोग भी एक ही प्रकार का नहीं है जैसे 'रानिन' 'साधुन' के साथ 'कोठियों' 'बहुतेरन्ह' आदि। हाँ, आपके कृतियों में आजकल की हिन्दी की सजीविता का संकेत है, जैसे 'लड़कई से आज तक' 'कुछ न पढ़ाया'। इनके लिये 'नासिकेतोपाख्यान' से निम्नांकित अवतरण प्रस्तुत है—

"राजा रघु ऐसे कहते हुए वहाँ से तुरन्त हर्षित हो उठे। और भीतर जा मुनि ने जो आश्चर्य बात कही थी सो पहले रानी से सब सुनायी। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार-पुकार रोने लगी और गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कहने लगी कि महाराज जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लड़के समेत झट उसको बुला ही लीजिये क्योंकि अब मारे शोक के मेरी छाती फटती है। कब मैं सुन्दर बालक सहित चन्द्रावती का मुँह, कि जो बन के रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोगी। देखो, यह कर्म का खेल, कहाँ इहाँ नाना भाँति भोग-विलास में वो फूलन्ह के बिछौने पर सुख से जिसके दिन-रात बीतते थे, सो अब जङ्गल में कन्दमूल खा काँटे कुश पर स्यारों के चहुँदिश डरावने शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी।"

उपरोक्त अंश से स्पष्ट है कि मिश्रजी का गद्य नितान्त सीधा सादा है। शाब्दिकता अथवा रंगीनेपन के स्थान पर स्थूल-व्यञ्जना-प्रणाली ही प्रयुक्त की गयी है। यहाँ पर लल्लूलाल जी की तरह न ब्रज का परिधान है न पद्यात्मिकता। यह केवल व्यवहारोपयोगी खड़ी बोली की एक प्रतिलिपि है।

लल्लूलाल जी

लल्लूलाल का जन्म सम्वत् १८२० तथा मृत्यु सम्वत् १८८२ में हुई थी। आगरा निवासी, लल्लूलाल जी का प्रामाणिक गद्य ग्रन्थ 'प्रेमसागर' है। इसमें श्री मद्भागवत दशमस्कन्ध की कृष्ण-कथा है। आपने भी कलकत्ते के फोर्ट विलियम

घिर आयी थी, मोर गम्भीर गरज से गरजते और बिजली की दमक शस्त्र की सी चमकती थी, चारों ओर ठौर ठौर ध्वजा सी फहर रही थी, दादुर, मोर, कपोतों की सी भाँति बन बन बोलते थे और बड़ी बड़ी बूँदों की झड़ बाणों की सी झड़ी लगी थी। उस समय में पावस को आते देख, ग्रीष्म, सेन छोड़, अपना जी ले, भागा तब मेघ पिया ने वर्षा से पृथ्वी को सुख दिया। उसने जो आठ महीने पति के वियोग में योग किया था, तिसका भोग कर लिया।"

अनुवादित ग्रन्थ 'प्रेमसागर' के अतिरिक्त श्री लल्लूलाल ने चार अन्य पुस्तकें ब्रजभाषा की कथाओं के आधार पर लिखी हैं, जिनके नाम हैं—सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, शकुन्तला नाटक और माधोनल।

प्रथम निर्माणकों का सापेक्षिक योग

उपरोक्त चारों गद्यकारों का रचना-काल सम्वत् १८६० का समीपवर्ती है। इनमें से पूर्णतः मौलिक गद्य लेखक इंशा साहब ही ठहरते हैं। आप की शैली भी स्वतन्त्र है। जिस प्रकार इनकी 'रानी केतकी की कहानी' का कोई आधार-ग्रन्थ न था, उसी तरह उनका आलेख्य भी किसी पूर्ववर्ती के गद्य का अनुकरण नहीं कर रहा है। इसका वेष नितान्त नवीन और चाल-ढाल निराली ही है किन्तु इसमें केवल मनोविनोद की ही सृजन-शक्ति थी। अत एकाङ्गी होने के कारण उसे हम प्रौढ़ गद्य का स्वरूप स्वीकार नहीं करते हैं। इसी प्रकार लल्लूलाल जी की रचना भी यद्यपि हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक साहित्यिक प्रयास भले ही कहाता है, किन्तु इसमें व्यवहारिकता की कमी तथा समय से उलटे लौटने की प्रवृत्ति होने से, हिन्दी का बोधगम्य स्वरूप नहीं मिलता। आपकी शैली का प्रयोग सार्वभौमिक भी नहीं है। हाँ सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा में हमें आधुनिक हिन्दी का मूल-रूप लक्षित हो जाता है। मिश्र जी की शैली लल्लूलाल जी की अपेक्षा अधिक गठीली और विशद

भी है। व्यञ्जना और भाव-प्रकाशन की दृष्टि से यह अधिक सविदग्ध जँचती है। किन्तु सदासुखलाल का आविर्भाव चूँकि मिश्रजी से पहले का है, तथा भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त यह महत्वपूर्ण विशेषता पायी जाती है कि आपने किसी अन्य के आदेशानुसार नहीं, प्रत्युत स्वान्तः सुखाय अपनी लेखनी से 'भाषा' के लुप्त-प्राय प्रभाव को फिर से जाग्रत किया है—आपका स्थान अधिक महत्वशाली है। शैली की दृष्टि से भी मुन्शी जी की भाषा सर्वत्र व्यावहारोपयोगी है [illegible] आधुनिक गद्य का आदि रूप प्रचुर मात्रा में देखने को [illegible] है। अतएव सदासुख जी को हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में [illegible] देना चाहिए।

भी हिन्दी खड़ी बोली के साथ बेजोड़ मिलाप दिखायी देता था।

खड़ी बोली का यह स्वरूप उर्दू भाषा के नाम से विख्यात हो गया। यह उर्दू भाषा कभी-कभी देवनागरी लिपि में भी लिखी गयी किन्तु कचहरियों में उर्दू लिपि का ही अधिकार था। इस प्रकार उर्दू को प्रोत्साहन मिलने से जनता में भी उर्दू के प्रति अनुरक्ति बढ़ी। सम्वत् १८९० में दिल्ली में एक उर्दू अखबार प्रकाशित हुआ। सारांश यह कि एक ओर तो मैकाले की शिक्षा-योजना के अनुसार अङ्गरेजी शिक्षा के प्रचार से हिन्दी को इस काल में धक्का लग रहा था, दूसरी ओर हिन्दी के समक्ष उर्दू की उन्नति पहले प्रारम्भ हो गयी।

राजा शिवप्रसाद

सम्वत् १९०२ में राजा शिवप्रसाद ने बनारस से "बनारस अखबार" निकाला। इसकी लिपि यद्यपि नागरी थी किन्तु शब्द-भण्डार उर्दू ही था। इस समय उर्दू ही शिक्षित-वर्ग की खड़ी बोली हो रही थी। हाँ, आगरे में पादरियों की "स्कूल बुक सोसाइटी" से 'कथा-सार' प्रभृत जो अनुवादित पुस्तकें निकल रही थी उनकी भाषा अवश्य शुद्ध और परिष्कृत हिन्दी थी। अङ्गरेजी स्कूलों की शिक्षा विषयक पुस्तकों की जो माँग उत्पन्न हुई उनकी भाषा में उर्दू-फारसी न घुस सकी। आगरे की उक्त सोसाइटी के लिए ओंकार भट्ट ने भूगोल-सार और बद्रीलाल शर्मा ने रसायन प्रकाश लिखा। कलकत्ता में भी एक स्कूल बुक सोसाइटी ने पदार्थ विद्यासार तथा अन्य विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित की थीं। इसी प्रकार मिर्जापुर में भी ईसाइयों के आरफन प्रेस ने शिक्षा-सम्बन्धिनी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं।

वास्तव में ईसाइयों ने ही शिक्षा विषयक पुस्तकों का प्रकाशन सर्वप्रथम अपने हाथ में लिया और हिन्दी गद्य के विस्तार में उस समय अच्छी सहायता दी। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है नव-शिक्षित लोगों की अनुरक्ति भाषा से हटकर उर्दू की

सहयोगी, जिनका शिक्षा विभाग में प्रभाव-पूर्ण व्यक्तित्व था, 'भाखा' से बुरी तरह अनखनाया करते थे। उनमें से कुछ तो हिन्दी के ऐसे प्रबल विरोधी थे कि हिन्दी को वे 'मुश्किल ज़बान' कहकर उसके पढ़ाने की व्यवस्था तक न होने देना चाहते थे। उन्होंने इसे हिन्दुओं की 'मज़हबी ज़बान' और 'गवाँरी बोली' समझा। अस्तु, जब किसी प्रकार हिन्दी ने इन स्कूलों के पाठ्य-क्रम में स्थान पाया तो पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

राजा शिवप्रसाद ने अपने मित्रों सहित समय की लहर पर दृष्टि डालते हुए हिन्दी के उत्थान में इस कशमकश के युग में जो पाठ्य-पुस्तकें लिखीं उनकी भाषा ठेठ हिन्दी के साथ फारसी अरबी के प्रचलित शब्दों को लिये थी। राजा साहब ने अपनी हिन्दी में उर्दू का प्राधान्य स्वीकार किया है और उर्दू-दाँ होने की दुहाई देते हुए अपने सिद्धान्त की प्रतिष्ठा में हिन्दी को जिस स्वरूप में व्यवहृत किया है वह भाव उनके लिखे 'भाषा का इतिहास' शीर्षक लेख के निम्नाङ्कित अंश में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है—

'हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आम फहम और खास पसन्द हों अर्थात् जिनको ज़्यादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहाँ के पढ़े लिखे आलिम, फ़ाज़िल पण्डित विद्वान की बोल-चाल से छूट नहीं गये हैं ।'

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा विभाग में सान्निध्य होने के पूर्व राजा साहब का सरल हिन्दी के प्रति अनुराग था जैसा कि उनके लिखे हुए इतिहास तिमिर-नाशक की भाषा से स्पष्ट है किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् वे निरन्तर उर्दू दाँ बन गये। इतिहास तिमिर-नाशक की भाषा में रोचकता और अच्छा प्रवाह है किन्तु राजा साहब द्वारा निर्मित सब ग्रन्थों की भाषा एक सी नहीं है। कहीं पर यदि वे 'उर्दुए मुअल्ला' है तो अन्यत्र सुबोध और वस्तुतः आम फहम के निकट भी। 'इतिहास तिमिर-नाशक' से एक अवतरण यहाँ प्रस्तुत है—

में तारामोहन मित्र आदि का प्रयास था। इसकी भाषा 'बनारस अखबार' से कहीं अधिक सुधरी हुई थी। आगरे से भी मुन्शी सदासुखलाल के सम्पादकत्व में 'बुद्धि-प्रकाश' का उदय हुआ। इस पत्र में अपने समय की परिमार्जित हिन्दी के भली प्रकार दर्शन मिले। इस पत्र से केवल एक वाक्य के उद्धरण से ही इसकी विशेषता सिद्ध हो जाती है।

"स्त्रियों में सन्तोष, नम्रता और प्रीति यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं, केवल विद्या की न्यूनता है, जो यह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़कों को सिखाना पढ़ाना जैसा उनसे बन सकता है वैसा दूसरों से नहीं।"

राजा लक्ष्मण सिंह के पत्र 'प्रजा हितैषी' में भी 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद शुद्ध और सरल हिन्दी में प्रकाशित होता था। इसने हिन्दी को सुधारने में प्रशंसनीय और महान उद्योग किया। शकुन्तला की भाषा में हिन्दी के ठेठ शब्दों के [illegible]

'[illegible] मधुर वचनों के [illegible] को [illegible] है कि तुम [illegible] प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ [illegible] है जिससे तुमने अपने कोमल [illegible] को कठिन [illegible] किया है।'

उपरोक्त अवतरण में राजा शिवप्रसाद की प्रस्तुत हिन्दी और फारसी अरबी की लड़खड़ाहट नहीं है, प्रत्युत उर्दू के प्रयोगों बहिष्कार के साथ पूर्व-प्रचलित सरल संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। इसी समय स्वामी दयानन्द आर्य-समाज की पताका लेकर अवतीर्ण हुए। अपने धार्मिक आन्दोलन को लोक-व्यापी बनाते हुए उन्होंने हिन्दी के भाषा विषयक सङ्घर्ष में अपना निजी स्थान बना लिया।

स्वामी जी संस्कृत के विद्वान तथा काठियावाड़-निवासी होने के कारण गुजराती के अच्छे ज्ञाता थे। स्वामी दयानन्द के युग तक

स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी

हिन्दी साहित्य कथा-कहानियों की सीमा को पार न कर सका था। स्वामी जी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने हिन्दी के गद्य भाग को समुन्नत बनाया। सामाजिक, दार्शनिक तथा राजनैतिक विषयों पर सबसे पहले उन्हीं की लेखनी चली। स्वामी जी सामाजिक जीवन के लिए भीषण वायुचक्र थे। इनके आन्दोलन ने हिन्दी को उठाया और उसमें विचार साहित्य की सृष्टि हुई। दयानन्द जी का एक मण्डल है। आर्य समाज का हिन्दीसाहित्य में निजी मत है। नाथूराम शर्मा, पद्मसिंह शर्मा, प्रो० इन्द्र वशीधर विद्यालङ्कार भूदेव शर्मा विद्यालङ्कार इत्यादि लेखकों पर आर्यसमाज की छाप है। जहाँ तक स्वामी दयानन्द जी का सम्बन्ध है, उनकी हिन्दी संस्कृत के पण्डितों की है। उसमें रोचकता और शालीनता न होकर संस्कृत के तत्सम शब्दों के आधिक्य से कर्कशता और रूखापन आ गया है। स्वामी जी 'सब' के लिए 'सर्व' प्रयुक्त करते थे। आपके लिखे 'सत्यार्थ प्रकाश' 'वेदार्थ प्रकाश' 'संस्कार विधि' 'ऋग्वेदादि भाषा' की हिन्दी वस्तुतः 'आर्य-भाषा' है। उसमें खड़ी बोली की सुगठित सजीविता नहीं।

स्वामी दयानन्द जी के अतिरिक्त अन्य और दो लेखकों ने आर्य समाज के मञ्च से हिन्दी लिखी। ये भीमसेन शर्मा और ज्वालादत्त

शर्मा हैं। ये दोनों सज्जन स्वामी जी के विश्वसनीय और निकटवर्त्ती शिष्य थे। आर्य-समाज का प्रचार करते हुए इन्होंने हिन्दी का भी प्रचार-कार्य किया। भीमसेन का हिन्दी में संस्कृत शब्दों का समर्थन निराला है। उर्दू शब्दों तक को आपने संस्कृत का जामा पहनाया और संस्कृत के धातु रूपों में उनकी उत्पत्ति ढूँढी है। 'शिकायत' 'शिक्षायत' लिखते थे। संस्कृत को ही आपने हिन्दी शब्द-कोष का एक मात्र स्रोत स्वीकार किया है।
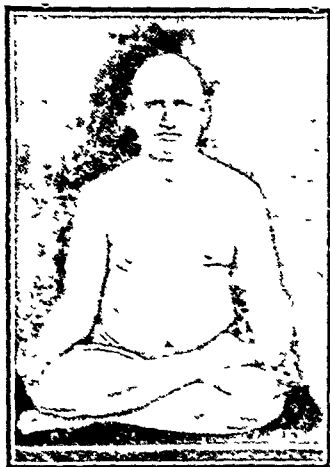
स्वामी दयानन्द सरस्वती

श्रद्धाराम फुल्लौरी (पञ्जाबी) स्वामी दयानन्द के विरोध में साहित्यिक योग दे रहे थे। उनकी भाषा में पञ्जाबीपने की सान्निध्यता अधिक है। साधारण प्रकार से काव्यकला और हिन्दी साहित्य पर आर्य समाज का प्रभाव ध्यान दिलाने लायक नहीं पड़ा परन्तु हिन्दी गद्य के निर्माण में इनका अनुपस्थित न करने योग्य हाथ है। इस समय तक हिन्दी के सभी लेखक अपनी अपनी शैली रखते थे। हर एक अपने अलग ढंग से अपने पथ पर बढ़ रहा था। एक ओर यदि राजा शिवप्रसाद उर्दू की हिमायत करते थे तो दूसरी ओर उनके विपरीत स्वामी दयानन्द और भीमसेन आदि संस्कृत को एक मात्र आधार मानते थे। वास्तव में हिन्दी का स्वरूप पहचानने वाले राजा लक्ष्मण सिंह प्रभृति इने गिने सज्जन ही थे। ऐसे समय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रतिभा द्वारा हिन्दी को एक क्रान्तिकारी देन दिया। अब सिपाही विद्रोह शान्त हो चुका था। अङ्गरेजों के शासन

भारतेन्दु जी की प्रतिभा का विकास सर्वतोमुखी था। आपने भाषा और साहित्य दोनों का ही रूप सँवारा। काव्याराधन में सन्लग्न रहते हुए भी उन्होंने गद्य की भाषा का जैसा महत्वपूर्ण परिमार्जन किया है, वह वास्तव में उन्हीं का काम है। उनके नाटकों से हिन्दी में एक नवीन क्षेत्र की स्थापना हुई। समाज का जीवन अब जिस प्रकार अधिक शिक्षित और सुसंस्कृत हो रहा था, साहित्य इतना उन्नत न हो पाया था। समाज से साहित्य पिछड़ रहा था। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों से जन-रुचि सन्तुष्ट हुई तथा समाज और साहित्य के मध्य सन्धि स्थिर हुई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

अनेक लोगों के मत में भारतेन्दु ने गद्य की सेवा गौण रूप से ही की है। उनका प्रधान व्यक्तित्व कवि और नाटककार का ही है। किन्तु तब भी उनके नाटकों का गद्य उनकी हिन्दी विषयक सिद्धान्त रूप से स्वीकृत शैली का परिचायक है। उर्दू और संस्कृत दोनों के ही [illegible] से हिन्दी के वास्तविक पथ-प्रदर्शन की आपने रक्षा की है। हिन्दी [illegible] के महत्व धारण किये हुए उर्दू-हिन्दी में भारतेन्दु जी के राजा शिवप्रसाद की उर्दू-दानी [illegible] न होता था। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने उर्दू के कोई शब्द न लिया हो नहीं। भारतेन्दु [illegible] विषयक किसी प्रकार का पक्षपात सम्भव न था। आपने उर्दू शब्दों का व्यवहार किया किन्तु एक नवीन सुन्दरता से। उर्दू से प्रयुक्त शब्दों के [illegible] आपने खड़ी बोली का हिन्दी स्वरूप दिया और अपनी हिन्दी विषयक राष्ट्रीय भावना की रक्षा करते हुए उनका व्यवहार किया।

ने कई लेखक और कवि उत्पन्न किये। उन मित्रों और सहयोगियों का खासा 'हरिश्चन्द्र मंडल' बन गया। राजनैतिक उलट-फेर के पश्चात् देश में जो सामयिक सामाजिक परिवर्तन की बयार बही और उसके प्रभाव से देश की भाषा, भाव, रुचि आदि में एक नवीनता के साथ-साथ शिक्षित वर्ग की भावनाओं में जो राष्ट्रीयता व्यापक हुई, उन सबका 'सम्यक आधार' हरिश्चन्द्र मण्डली के ज़िन्दा-दिल लेखकों की लेखनी का ही कौशल है।

हरिश्चन्द्र-मण्डल

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अवसान के बाद उनकी मण्डली के देदीप्यमान रत्नों ने उनके निर्देशित क्षेत्र पर हिन्दी की श्रीवृद्धि की। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवास दास, बाबू तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास आदि के नामों का उल्लेख भारतेन्दु जी के साथ ही होना चाहिए। उन्होंने अपने जीवन में भाषा का जो स्वरूप स्थिर कर दिया था उसके अनुरूप अब गद्य के विकास की आवश्यकता थी। शिक्षा का सम्यक प्रचार-प्रसार हो जाने से अब ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र झलकने लगे थे। आलेख विषयों की भी वृद्धि हुई। इतिहास और स्त्री-शिक्षा पर स्वयम् भारतेन्दु जी अपनी लेखनी सञ्चालित कर चुके थे अतः गद्य के विकास के अनुरूप ब्राह्मण-निबन्ध-रचना की ओर बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र अग्रसर हुए

गद्य के अनुसन्धान में सम्भवतः इसी से लेखकों ने पत्र-पत्रिकाएं सञ्चालित की और सम्पादन-कार्य में प्रवृत्त हुए इन पत्र-पत्रिकाओं द्वारा गद्य की विभिन्न शैलियां उदित हुई और हिन्दी में शोभित होने लगी। उस समय के कुछ पत्रों की तालिका यहां दी जाती है

अल्मोड़ा अखबार (सम्पादक सदानन्द सनवाल।
हिन्दी दीप्ति प्रकाश (कार्तिकप्रसाद खत्री)
बिहार-बन्धु (,, केशवराम भट्ट)

है और आगे कहा जावेगा सब शास्त्रार्थ के आगे निरी बकबक है और विश्वास के आगे मन. शान्तिकारक सत्य है !!!

महात्मा कबीर ने इस विषय मे कहा है वह निहायत सच है कि जैसे कई अन्धों के आगे हाथी आवे और कोई उसका नाम बता दे, तो सब उसे टटोलेंगे। यह तो सम्भव ही नही है कि मनुष्य के बालक की भाँति उसे गोद मे ले के सब कोई अवयव का बोध कर ले। केवल एक अङ्ग टटोल सकते हैं और दांत टटोलने वाला हाथी को खूटी के समान, कान छूने वाला सूप के समान, पांव स्पर्श करने वाला खम्भे के समान, कहेगा। यद्यपि हाथी न खूंटे के समान है और न खम्भे के। पर कहने वालो की बात झूठी भी नहीं है। उसने भली-भाँति निश्चय किया है और वास्तव मे हाथी का एक अङ्ग वैसा ही है जैसा वे कहते हैं। ठीक यही हाल ईश्वर के विषय मे हमारी बुद्धि का है। पूरा-पूरा वर्णन वा पूरा साक्षात कर ले तो वह अनन्त कैसे और यदि निरा अनन्त मान के अपने मन और वचन को उनकी ओर से बिल्कुल फेर ले तो हम आस्तिक कैसे ! सिद्धान्त यह कि हमारी बुद्धि जहा तक है वहां तक उनकी स्तुति-प्रार्थना ध्यान उपासना कर सकते है और इसी से हम शान्ति लाभ करेंगे।

प्रतापनारायण का [illegible] है [illegible] का प्राय अभाव है। [illegible] और कहीं कहीं विचित्र लिपि-छाप [illegible] प्रदर्शन की वृत्ति नहीं है। [illegible] नैतिकता की शिक्षा [illegible] देते [illegible]

बालकृष्ण भट्ट प्रतापनारायण [illegible] भी इसी कोटि के निबन्ध लिखे हैं [illegible]

बालकृष्ण भट्ट [illegible]

और वह भी भारतेन्दु जी के [illegible]

प्रतापनारायण मिश्र की शैली-निर्झरणी चाहे कितनी टेढ़ी-मेढ़ी क्यों न कही जाय, उसके पास बैठ कर बाद के अनेक लेखकों ने जीवन ग्रहण किया और पृथक रूप से उनके पद-चिन्ह-उपासक कहलाये, किन्तु ऐसी किसी विशेषता के दर्शन हमें भट्टजी की कृतियों में नहीं मिलते।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

'प्रेमघन' जी मिर्जापुर निवासी थे। स्वाभाविक साधारण रूप से कुछ लिखना शायद आप निस्सार समझते थे। बड़े लम्बे-लम्बे वाक्यों में लेखनी का चमत्कार दिखाना उनका अभीष्ट रहता था। "वे कोई लेख लिख कर जब तक उसका कई बार परिष्कार और मार्जन नहीं कर लेते थे तब तक छपने नहीं देते थे"। इस कारण इनकी शैली सबसे विलक्षण है। भाषा के सानुप्रास प्रयोग से इस में दुरूहता आ गयी है।

यह कहिये कि इस समय तक भारतेन्दु जी, मिश्र जी, भट्टजी आदि के प्रयास स्वरूप भाषा में यथेष्ट बल और व्यञ्जकता का समावेश हो चुका था, अन्यथा "प्रेमघन' जी की शैली का कोई महत्व न रहता। आपने 'आनन्द-कदम्बिनी" मासिक और 'नागरी-नीरद" साप्ताहिक का जन्म दिया था। "भारत-सौभाग्य" और "वीराङ्गना रहस्य" नामक नाटक आपकी कृतियाँ है। नीचे के अवतरण से आपकी भाषा विषयक जानकारी मिल सकती है —

बदरीनारायण चौधरी

' दिव्य देवी श्री महरानी बड़हर लाख झञ्झट झेल और चिरकाल पर्यन्त बड़े बड़े उद्योग और मेल से दुख के दिन सकेल अचल 'कोर्ट'

भारतेन्दु के सहवर्ती कुछ अन्य लेखक

व्यास, मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या तथा राधाचरण गोस्वामी का नाम हिन्दी के उन्नायकों में स्मरणीय है। केशवराम भट्ट ने विहार प्रान्त से 'विहार-बन्धु' नामक साहित्यिक समाहिक पत्र द्वारा हिन्दी की सेवा की। आपने "सज्जाद सम्बुल" और "शमशाद सौसन" नामक दो नाटक भी लिखे। आपके उल्लेख में उर्दू की प्रधानता रहती थी, अतः इनके नाटक भी, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, उर्दू की ही तर्ज़ पर हैं।

श्री अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत के विद्वान् और हिन्दी के अच्छे कवि थे। आप उन दिनों सनातनधर्म के प्रसिद्ध उपदेशक थे। 'विहारी-विहार' नामक काव्य-ग्रन्थ में आपने विहारी के दोहों की विशद-विवेचना की है। गद्य-साहित्य में आपका योग विशेष महत्त्व का न होते हुए भी आपकी छोटी-छोटी कई पुस्तकें मिलती हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं 'गोसङ्कट नाटक' 'ललिता-नाटक,' गद्य-काव्य-मीमांसा'।

श्री राधाचरण गोस्वामी ने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' से प्रोत्साहित हो 'भारतेन्दु' नामक पत्र निकाला। इनके लिखित गद्य-ग्रन्थ अधिकतर बङ्गलानुवाद ही हैं, फिर भी आपका विदेश-यात्रा विचार तथा 'विधवा-विवाह-विवरण स्वतन्त्र ग्रन्थ है। श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या आपके समय के प्रतिष्ठित [illegible] और [illegible] थे। आपने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के सञ्चालन में [illegible] था। आपने अपनी कृति 'रासो-संरक्षा' में पृथ्वीराज रासो की सत्यता का समर्थन किया है। इस कृति का वास्तव में [illegible] ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। आपने अपनी [illegible] पर आश्रित रासो की व्यर्थ की प्रतिष्ठा स्थापित करने में [illegible] है।

भारतेन्दुकाल के साहित्योदय में जो प्रतिभाशाली साहित्यकार प्रकाशान्वित हुईं उनका पूरा परिचय इस समय तक न मिल सकता। जब तक उनकी सामूहिक रूप में की गयी सेवाओं की

वस्तु अथवा शैली की आधुनिक कसौटी पर कदाचित ही कोई विशेष महत्ता, किन्तु अपने युग मे ये लोग अवश्य महत्त्व रखते हैं। इन साहित्य मनीषियो ने विभिन्न केन्द्रो में अपना अपना क्षेत्र निर्धारित कर लिया और असीम तत्परता तथा लगन से वे हिन्दी की उन्नति में लीन हो गये।

प्रतापनारायण मिश्र "हिन्दी-हिन्दू, हिन्दुस्तान" की भेरी बजाते हुए स्थान-स्थान पर व्याख्यानो द्वारा हिन्दी प्रचार करते थे। गौरीदत्तजी नागरी प्रचार का झण्डा लिये दौड़ा करते थे। आपने 'गौरी नागरीकोष' नामक एक शब्दकोष भी तय्यार किया। स्थान स्थान पर भारतेन्दु जी के नाटकों का बहुत काल तक अभिनय होता रहा। हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों की उपयोगिता पर, सर्वत्र, आये दिन व्याख्यान हुआ करते थे।

इस समय के प्राय. समस्त हिन्दी के हिमायती इसे कोर्ट-भाषा बनाने के लिए अधिक परिश्रम कर रहे थे। कई स्थानों पर हिन्दी-प्रचार के लिए सभा-समितियाँ स्थापित हुईं। तोताराम की 'भाषा सम्वर्द्धिनी सभा' की भाँति प्रयाग में भी "हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्यसभा" और कालान्तर मे "काशी नागरी प्रचारिणी सभा" की स्थापना हुई। प्रान्तीय शासकों के पास आये दिन डैप्यूटेशन और मेमोरैण्डम पहुँचा करते थे। सारांश यह कि हिन्दी के उन्नायको ने इस समय नागरी प्रचार के लिए असीम त्याग और सतत-उद्योग किये और इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हिन्दी-प्रचार ने उत्तरोत्तर विशदता धारण की।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

काशी के श्यामसुन्दरदास, रामनारायण मिश्र और शिवकुमार सिं० ठाकुर आदि ने अपने छात्र जीवन में ही हिन्दी-प्रचार का बीड़ा उठाया और काशी नागरी प्रचारिणी सभा" की स्थापना की। इस सभा की सारी समृद्धि और कीर्ति श्यामसुन्दरदास

परम्परा को जीवित रखने वालों के नाम हैं—माधवप्रसाद मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और गोविन्दनारायण मिश्र। हरिश्चन्द्र-युग की इतनी समीक्षा के बाद आगे इस युग के परवर्ती तथा वर्तमान गद्य-लेखकों की चरचा की जाती है।

गोविन्दनारायण मिश्र संस्कृत के धुरन्धर पण्डित थे। इनकी गद्य-लेखन-शैली को धुरन्धर' विशेषण से विभूषित करना चाहिए। आपकी जैसी दीर्घ समासान्त पदावली किसी भी पूर्ववर्ती अथवा वर्तमान हिन्दी लेखक में न मिलेगी। इनकी भाषा 'प्रेमधन' जी के अनुरूप गद्य-काव्यात्मक होती थी। आपका भाव-प्रकाशन ऐसा पाण्डित्यपूर्ण होता था कि वह केवल साधारण बुद्धि वालों के लिए ही बोधगम्य न था, वरन् साहित्यिक क्षमतावान पुरुषों के लिए भी कर्कश और दुरूह था। इनकी धुआँधार काव्यात्मक भाषा से पाठकों को गद्य के प्रति अरुचि सी होने लगे तो आश्चर्य नहीं। वास्तव में आपकी भाषा [illegible] देखते ही बनती है। केवल एक ही वाक्य में [illegible] विशेषणों का परिचय मिल जायगा—

गोविन्द नारायण मिश्र

[illegible] बरसाते हैं परन्तु [illegible] उसके समान सुन्दरचन्द्र मन्दमति मुख और [illegible] पर भाग्य व तुलसी प्रताप से निपतित उन सुधा से सरस बूँदों के भी

अन्तरिक्ष मे ही स्वाभाविक विलीन हो जाने से बिचारे उस नवेली नव रस से भरी बरसात मे भी उत्तप्त प्यासे और जैसे थे वैसे ही शुष्क नीरस पड़े धूल उड़ाते हैं।" उपरोक्त अवतरण से यह स्पष्ट है कि लेखक अपने मानसिक चिन्तन के अभाव को शब्दों की भूल-भुलैय्याँ उपस्थित करके दुरूह शैली मे छिपाना चाहता है। लेखक को कहना कुछ नही आता, कहने का ढोंग दिखलाना आता है। हाँ 'विभक्ति' विषयक इनकी परिपाटी आज भी कुछ प्रसिद्ध पत्रों को मान्य हो रही है।

माधव प्रसाद मिश्र की भाषा में भी यद्यपि संस्कृत का बाहुल्य है, किन्तु इनकी शैली अधिक अनुशासित और भावानुरूप है। आपने संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग सतर्कता से किया है। भाषा का प्रवाह सुस्थिर गति से भावोद्वेग का अनुगमन करता है, तथा गम्भीर विषयो के प्रतिपादन में इनकी सिद्धहस्तता से प्रभावित होना पड़ता है। आपने यद्यपि बहुत थोड़ा लिखा है किन्तु जो कुछ है उस पर आपके व्यक्तित्व की मुहर है। साराश मे आपका गद्य अच्छा है। 'रामलीला' नामक लेख मे एक उद्धरण नीचे दिया जाता है।

माधव प्रसाद मिश्र

"आठ सौ वर्ष तक हिन्दुओं के सिर पर कृपाण चली, परन्तु 'रामचन्द्र की जय' तब भी बन्द न हुई। सुनते हैं कि औरङ्गजेब ने असहिष्णुता के कारण एक बार कहा था कि हिन्दुओं! अब तुम्हारे राजा रामचन्द्र नही है, हम है। इसलिए रामचन्द्र की जय बोलना राजद्रोह करना है। औरङ्गजेब का कहना किसी ने न सुना। उसने राजभक्त हिन्दुओं का रक्तपात किया सही पर वह 'रामचन्द्र की जय' को न बन्द कर सका। कहाँ हैं वह अभिमानी लोग! अब रामचन्द्र के विश्व ब्रह्माण्ड को देखे और उस मृण्मय समाधि (कब्र) को देखे और फिर कहे कि राजा कौन है? भला कहाँ राजाधिराज रामचन्द्र और कहाँ एक अहङ्कारी नग-जन्मा मनुष्य?" आगे चलकर उसी लेख का अन्तिम भाग देखिये —

दृष्टिगत हैं। मुहाविरे गुप्तजी के बड़े चुस्त हैं। आपका व्यङ्ग बड़ा शिष्ट होता है। वह केवल सजग कर सकता है, आहत नहीं करता। व्यङ्ग की इतनी सत्तात्मकता अच्छे-अच्छे लेखकों में नहीं मिलती। परन्तु इनका व्यङ्ग विद्वानों का गूढ व्यङ्ग नहीं है। वह बिलकुल सतह पर रहता है। आपके 'शिवशम्भु का चिट्ठा' में एक अवतरण प्रस्तुत है:—

बालमुकुन्द गुप्त

"शर्मा जी महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिलबट्टे से भङ्ग रगड़ी जा रही थी। बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारङ्गियाँ छील-छील कर रस निकाला जाता था। इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं तबियत भुरभुरा उठी। इतने में वायु का वेग बढ़ा चीलें अदृश्य हुईं अँधेरा छाया, बूँदें गिरने लगीं। साथ ही तड़ातड़ धड़ाधड़ होने लगा। देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे कुछ वर्षा हुई बूटी तैयार हुई 'बम भोला' कह शर्मा जी ने एक लोटा भर चढ़ायी। ठीक उसी समय लाल डिग्गी पर बड़े लाट मिन्टो ने बङ्गदेश के भूतपूर्व छोटे लाट उडबर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय में कलकत्ते में यह दो आवश्यक कार्य हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु के बरामदे की छत पर बूँदें गिरती थीं और लार्ड मिन्टो के सिर या छाते पर।

गुप्तजी की लेखनी केवल तरल मनोरञ्जन की सामग्री ही खींचती हो यह बात न थी वे आलोचक भी मर्मभेदी थे। अन्योक्ति मय निबन्धों के ये बड़े सिद्धहस्त लेखक थे। ऐसे अन्योक्तिमय निबन्ध प्रतापनारायण को छोड़ कर अन्य बहुत कम लेखकों ने लिखे हैं।

हिन्दी के वर्तमान गद्य लेखकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी का पद महान और असाधारण महत्व का है। द्विवेदीजी के आविर्भूत होते ही हिन्दी का नवयुग आरम्भ होता है। आपकी हिन्दी के प्रति सेवाओं में गुरुत्व का दर्शन है। अपने दीर्घकालीन साहित्य-जीवन में द्विवेदीजी ने लेखकों की वृद्धि और लेख्य विषयों का विस्तार किया। आपने अपनी विभिन्न शैलियों द्वारा अनेक लेखकों की शैलियों का सृजन और मार्जन किया है। द्विवेदीजी संस्कृत के और अन्य अनेक भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं। आप विज्ञानादि विभिन्न विषयों के बहुज्ञ समझे जाते हैं। आप पहले रेलवे के एक कर्मचारी थे; साहित्य से राग उत्पन्न होते ही आपने त्याग और तपस्या का जीवन धारण कर लिया और प्रयाग से 'सरस्वती' सम्पादित करने लगे। 'सरस्वती' के आदि सम्पादक के पद से आपने हिन्दी की स्मरणीय सेवाएँ की हैं। हिन्दी में 'गणेशशङ्कर विद्यार्थी' प्रभृति-कुशल पत्र-सम्पादक ने द्विवेदीजी का ही शिष्यत्व ग्रहण कर और उनके निर्देशित मार्ग पर अग्रसर होकर सम्पादकीय [illegible]। निबन्ध से लेकर व्याकरण [illegible] कहानियों तक आप ने लिखा है [illegible] नहीं है परन्तु [illegible] मैथिलीशरण गुप्त [illegible] कवियों के [illegible] सम्पादकीय-जीवन में एक सम्पादक के कर्तव्य और [illegible] की परिभाषा रच दी है। आपकी [illegible] है। वर्तमान हिन्दी संसार द्विवेदीजी से अत्यधिक प्रभावित है और,
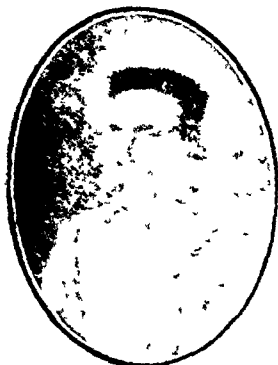
महावीरप्रसाद द्विवेदी

उसने उन्हें 'आचार्य' पद से विभूषित कर सन्तोष पाया है। गतवर्ष प्रयाग में-आपके सम्मानार्थ साहित्यिकों का एक मेला हुआ था। इस 'द्विवेदी अभिनन्दन मेले' में आचार्य ने जो भाषण दिया था वह हिन्दी प्रेमियों को स्मरण रहेगा। इण्डियन प्रेस, प्रयाग' से 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' नामक बृहद् ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। 'इसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने द्विवेदी जी को भेंट किया है।

साहित्य-क्षेत्र में उतरते ही द्विवेदीजी भाषा की अपाङ्गुता, स्थूलता और शिथिलता का परिहार करने में लग गये। अभी तक प्रायः सभी गद्य-लेखक व्याकरण के नियमों की अवहेलना करते चले आ रहे थे। आपने अपने प्रबल आन्दोलन और परिश्रम से भाषा की इस अनगढ़ता को दूर किया। आपके प्रयास से ही हिन्दी लेखकों ने भाषा में व्याकरण सम्बन्धी भूलें करना बन्द की और अपनी अपनी शैली का भी नियन्त्रण करने लगे। आचार्य की भाषा में ओज है, उसमें विचारों की व्यञ्जना की रीति हृदयग्राही और बोधगम्य है। विषय को अत्यधिक सरल और स्पष्ट कर देना आपकी शैली की विशेषता है। आपके वाक्यों में विषय विवेचन का सुन्दर और क्रमबद्ध सामञ्जस्य रहता है। नीचे उनके 'कवि और कविता', शीर्षक प्रबन्ध का एक अंश दिया जाता है :—

'कविता में कुछ न कुछ झूठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास की रामायण के खास खास स्थलों का स्त्रियों पर जितना प्रभाव पड़ता है उतना पढ़े-लिखे आदमियों पर नहीं। पुराने काव्यों का पढ़ने से लोगों का चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था उतना अब नहीं होता। हजारों वर्षों से कविता का क्रम जारी है। जिन प्राकृतिक बातों का वर्णन बहुत कुछ अब तक हो चुका है, जो नये नये कवि होते हैं वे उलट-फेर से प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन करते हैं। इसी से अब कविता कम हृदय-ग्राहिणी होती है।

"संसार में जो बात जैसी देख पड़े कवि को उसे वैसी ही वर्णन करनी चाहिए। उसके लिए किसी तरह की रोक या पाबन्दी का होना अच्छा नहीं। दबाव से कवि का जोश दब जाता है। उनके मन में भाव आप ही आप पैदा होते हैं। जब वह निडर होकर उन्हें अपनी कविता मे प्रकट करता है तभी उसका पूरा पूरा असर लोगो पर पड़ता है। बनावट से कविता बिगड़ जाती है। किसी राजा या किसी व्यक्ति-विशेष के गुण-दोषों को देखकर कवि के मन मे जो भाव उद्भूत हो उन्हे यदि बेरोक-टोक प्रकट कर दे तो उसकी कविता हृदय-द्रावक हुए बिना न रहे। परन्तु परतन्त्रता या पुरस्कार-प्राप्ति या और किसी तरह की रुकावट के पैदा हो जाने से. यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो कविता का रस जरूर कम हो जाता है। इस दशा मे अच्छे कवियों की भी कविता नीरस अतएव प्रभावहीन हो जाती है।"

ऊपर के उद्धरण की सामग्री की ओर न जाइये क्योंकि वह द्विवेदी जी के मानसिक विकास की कोई चीज नही है। वह केवल साधारण लोगों को 'कविता क्या है' यह समझाने के लिए लिखी गयी है। कहने का ढङ्ग देखिये। कितनी सरल प्रतिपादन-प्रणाली है! जिस समय वे किसी अधिक ऊंची चीज की गवेषणा करते हैं उनके वाक्य अपेक्षाकृत और सरल हो जाते है। परन्तु आलोचना के क्षेत्र में उनका दूसरा रूप है। आलोचनात्मक शैली को उनकी व्यङ्गात्मक शैली से प्रथक नहीं किया जा सकता। उनके एक लेख का आलोचनात्मक खण्ड उद्धृत किया जाता है।

"जून १९०७ के 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' में एक छोटा सा लेख श्रीयुत एस० सी० सान्याल एम० ए० का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ है। उसमे लेखक ने दिखलाया है कि कैसी-कैसी कठिनाइयों को झेलकर सर विलियम ने कलकत्ते में संस्कृत सीखी। क्या हम लोगों में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो सर विलियम की आधी भी कठिना-

से हमारा अभिप्राय उस ज्ञान समुदाय से है जिसे साहित्य-शास्त्रियों ने साहित्य की सीमा के भीतर माना है।"

ऊपर के वाक्य में कैसी अतार्किक परिभाषा दी गयी है। केवल 'साहित्यालोचन' पढ़ने वाला यही कहेगा कि श्यामसुन्दरदास की शैली कृत्रिम और आरम्भिक है, परन्तु 'साहित्यालोचन' अधिकतर अनुवाद-ग्रन्थ है। उसकी शैली में जो दोष दिखायी देते हैं वे श्यामसुन्दरदास की शैली के दोष न होकर उनके अनुवाद के दोष हैं। किसी बात को बारबार दोहराना और समझाना शिक्षक अपना पहला कर्तव्य समझता है। इसी भाव से प्रेरित होकर इस ग्रन्थ में पुनरुक्ति दोष आया है। उनकी नयी पुस्तकों में यह बात नहीं है। उनके नये ग्रन्थ 'गोस्वामी तुलसीदास' का एक अवतरण नीचे दिया जाता है —

"इसमें गोस्वामी जी की उत्कृष्ट योग्यता और प्रतिभा देख पड़ती है। गोस्वामी जी के पीछे उनकी नकल करने वाले तो बहुत हुए, पर ऐसा एक भी न हुआ कि जो उनसे बढ़कर हो या कम से कम उनकी समकक्षता कर सकता हो। हिन्दी कविता के कीर्ति-मन्दिर में गोस्वामी जी का स्थान सबसे ऊँचा और सबसे विशिष्ट है। इस स्थान के बराबर का स्थान पाने का कोई अधिकारी अब तक उत्पन्न नहीं हुआ है। इस अवस्था में हमको गोस्वामी जी को हिन्दी कवियों की रत्नमाला का सुमेरु मानकर ही पूर्व कथित साहित्य-विज्ञान के सिद्धान्त की समीक्षा करनी पड़ेगी।

'गोस्वामी जी ने देश के परम्परागत विचारों और आदर्शों का बहुत अध्ययन करके ग्रहण किया है और बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा की है। उनके ग्रन्थ जो आज देश के [illegible] इतना [illegible] के लिए धर्म-ग्रन्थ का [illegible] रक्षक [illegible] गोस्वामीजी हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता के [illegible] रक्षक थे [illegible] उनकी [illegible] अक्षरों में [illegible] हृदय-पटल पर [illegible]

काल तक अङ्कित रहेगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह एक साधारण नियम है कि साहित्य के विकास की परम्परा क्रमबद्ध होती है। इसमें कार्य-कारण का सम्बन्ध प्रायः ढूंढ़ा और पाया जाता है। एक काल विशेष के कवियों को यदि हम फल स्वरूप मान लें, तो उनके उत्तरवर्त्ती ग्रन्थकारों को फूलस्वरूप मानना पड़ेगा। फिर ये फूलस्वरूप ग्रन्थकार समय-समय पर अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के फलस्वरूप और उत्तरवर्त्ती ग्रन्थकारों के फूलस्वरूप होंगे। इस प्रकार यह क्रम सर्वथा चला जायगा और समस्त साहित्य एक लड़ी के समान होगा जिसकी भिन्न-भिन्न कड़ियाँ उस साहित्य के काव्यकार होंगे।

इस सिद्धान्त को सामने रखकर यदि हम तुलसीदास जी के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तो हमें पूर्ववर्ती काव्यकारों की कृतियां क्रमशः विकसित रूप में तुलसीदास जी में तो देख पड़ती हैं, पर उनके पश्चात् यह विकास आगे बढ़ता हुआ नहीं जान पड़ता। ऐसा भास होने लगता है कि तुलसीदास जी में हिन्दी-साहित्य का पूर्ण विकास सम्पन्न हो गया और उसके अनन्तर फिर क्रमोन्नत विकास की परम्परा बन्द हो गयी तथा उसकी प्रगति ह्रास की ओर स्पष्ट है। यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी

की महानता और सफल अभिव्यञ्जन के बल पर विश्व-विद्यालयों की उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जा सकता हो। श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल की कृतियों ने इस अभाव को एकदम पूर्ण कर दिया है। शुक्लजी की शैली अत्यन्त गम्भीर, मार्मिक और चुटीली है। बड़े-बड़े वाक्यों में भी बड़ा भारी सुन्दर आकर्षण है। उनकी लड़ी का एक वाक्य नाचते हुए मयूर के पङ्ख की भाँति एक के बाद एक निकल कर सजता हुआ चला आता है। उनका सामूहिक प्रभाव बड़ा ही गहरा और चिरन्तन पड़ता है। उनके प्रबन्ध के एक भाग का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।
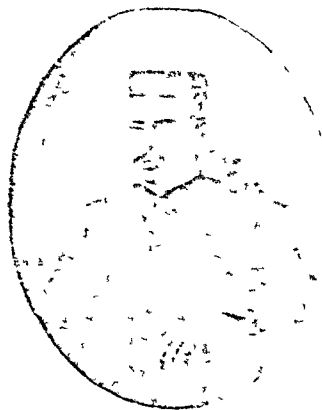
रामचन्द्र शुक्ल

'इन दिनों वर्षा का मङ्गल-घोष घर-घर क्या, एकभाव हिन्दू
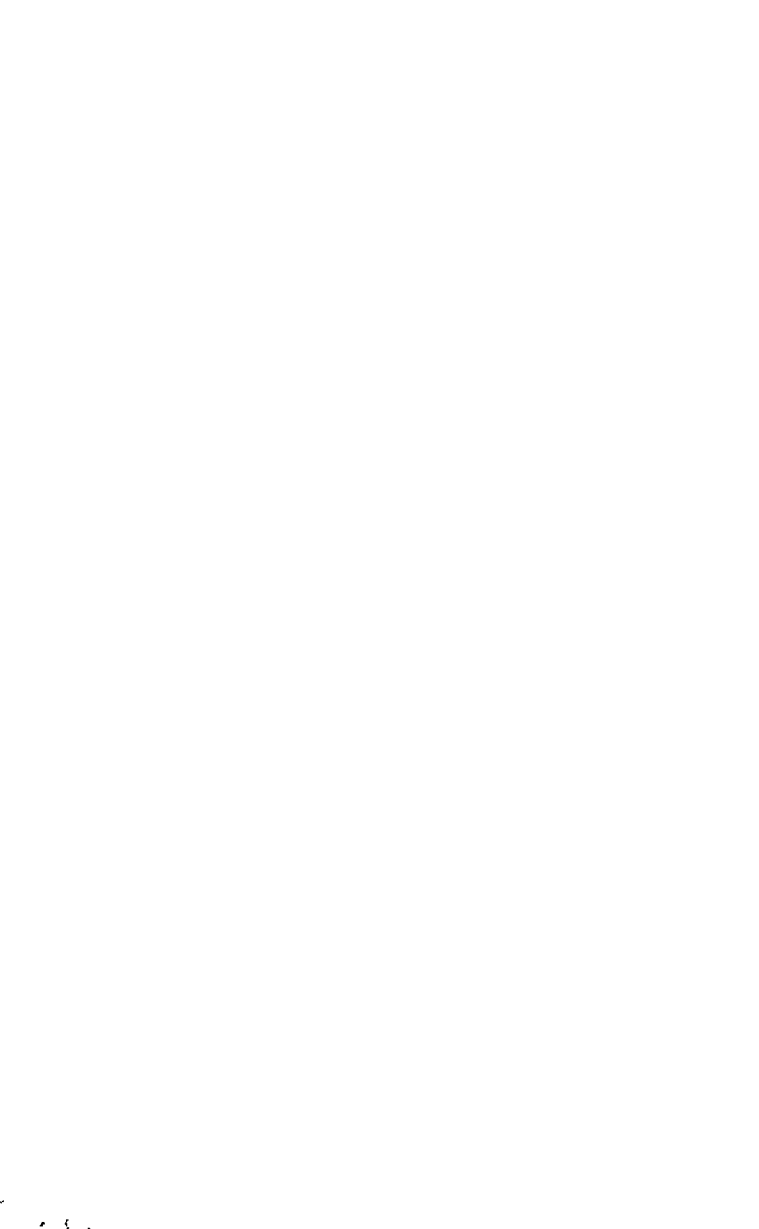
मिश्रबन्धु केवल एक रवानी के साथ बच्चों की भाँति वर्णन कर जाते हैं। वास्तव में सर्वत्र ही इनकी शैली ऐसी ही है। इन्हो बहुत ही सीमित शब्द-कोष से काम लिया है। परन्तु इनकी आलोच नाएँ बड़ी निर्भीक रही हैं और अपने विषय को प्रकट करने में इन्हो बड़े निस्सङ्कोच भाव से काम लिया है। इनकी शैली सर्वसुबोध अवश् है। शब्दों की लिपि-विन्यास की जटिलता और व्याकरण की दुरूहत के पचड़े में पड़ना मिश्रबन्धु हिन्दी के लिए ठीक नहीं समझते

पदुमलाल-पन्नालाल बख़्शी

बख़्शीजी हिन्दी के इने-गिने लेखकों में हैं जिन्होंने अध्यय करना पहला काम और लिखना बाद का काम समझा है। द्विवेदीज के बाद 'सरस्वती' का सम्पादन-भार इन्हीं के कन्धों पर आया और उस समय 'सरस्वती' और इनकी दोनों की खूब धूम रही। इन्हों रामचन्द्र शुक्ल की भाँति आलोचना के लिए नये तथ्यों का शो किया है। इन्होंने दर्जनों ऐसे प्रबन्ध लिखे हैं जो मनन करने के औ गम्भीर साहित्य की वस्तु हैं। इनके विषय इतिहास, दर्शन, साहित और अध्यात्म सभी प्रकार के थे और सभी विषयों पर इन्होंने उ कोटि की बातें लिखी हैं। इनकी शैली सीधी-सादी और मधुर है सर्वत्र छोटे-छोटे वाक्य देखने में आते हैं।

जिस आन्दोलन के प्रवर्तक कबीर थे उसकी दृष्टि जायसी के समान मुसलमान साधकों और फकीरों तक थी। भारत में राजनी सत्ता स्थापित करने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रयत्न करत रहे। परन्तु देश में दोनों का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत मे मुसलमानों का उतना ही सम्बन्ध हो गया था जितना हिन्दुओं का प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी इन दोनों के धर्मों का प्रश्न [illegible] समन्व में हो गया। हिन्दी और फारसी से उर्दू की सृष्टि हुई। उसी प्रक हिन्दू और मुसलमान की कला ने मध्य-युग में एक नवीन भारती कला की सृष्टि की। देश में शान्ति भी स्थापित हुई। कृषकों का का

निर्विघ्न हो गया। व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी। देश में नवीन भाव का यथेष्ट प्रचार हो गया।

अकबर के राजत्व-काल में इसका पूरा प्रभाव प्रकट हुआ। उनके शासन-काल में जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उसमें हिन्दू और मुसलमान का व्यवधान नहीं था। अकबर के महामन्त्री अबुल-फज्ल ने एक हिन्दू मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उसका भावार्थ यह है। "हे ईश्वर, सभी देव-मन्दिरों में मनुष्य तुम्हीं को खोजते हैं, सभी भाषाओं में मनुष्य तुम्हीं को पुकारते हैं, विश्व-ब्रह्मवाद तुम्हीं हो और मुसलमान धर्म भी तुम्हीं हो। सभी धर्म एक ही बात कहते हैं कि तुम एक हो, तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मसजिदों में तुम्हारी प्रार्थना करते हैं और ईसाई गिरजाघरों में तुम्हारे लिए घण्टा बजाते हैं। एक दिन मैं
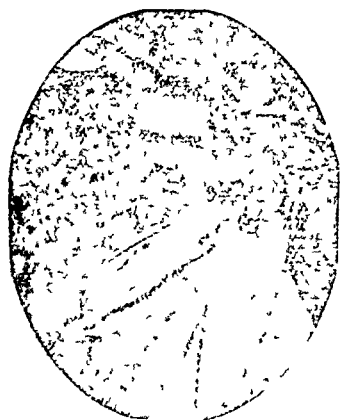
पदुमलाल पन्नालाल बख्शी

उपरोक्त अवतरण में भी भाषा की वही गति है, परन्तु आलोचना के वेग में जो स्फूर्ति आनी चाहिए वह स्पष्ट दिखायी देती है। इस शैली में आत्मीयता की छाप है। अधिकारी ज्ञान का परिचय भी इस लेख में मिलता है।

आपकी कुछ कृतियाँ स्वतन्त्र और मौलिक हैं। कुछ अङ्गरेज़ी के अनुवाद रूप में प्रकाशित हुई हैं। आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। 'हिन्दी साहित्य-विमर्श', 'विश्व-साहित्य', 'पञ्च-पात्र' आदि इनके उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। पदुमलाल का स्थान हिन्दी में अन्तरराष्ट्र स्थापित करने की दृष्टि से ऊँचा समझा जायगा।

राय बहादुर श्यामसुन्दरदास के सम्पर्क और मैत्री से स्वर्गीय रायबहादुर हीरालाल हिन्दी साहित्य की सेवा की ओर अग्रसर हुए।

रा. ब. हीरालाल

उन्होंने जो कुछ लिखा वह इतिहास तथा पुरातत्व पर लिखा और इस विषय के वे अच्छे विद्वान थे। उनकी लेखन-शैली पर एक ओर इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा का प्रभाव पड़ा है और दूसरी ओर श्यामसुन्दरदास का। इसलिए ये छोटे-छोटे वाक्य भी लिखते हैं और कहीं कहीं पर बड़े बड़े वाक्यों का भी प्रयोग करते हैं। इनमें प्रायः सरसता का अभाव है। नीचे इनके लेख का एक अवतरण दिया जाता है —

'चित्रकूट छोड़ने पर श्रीरामचन्द्र जी सबसे पहले महर्षि अत्रि के आश्रम को पहुँचे। चित्रकूट के पास इनका आश्रम अब भी प्राचीन नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ के तपस्वियों ने राम को सावधान करते हुए दण्डक वन में जाने का सुगम मार्ग बतलाया। तब वे कई ऋषियों को देखते मरणप्राय शरभङ्ग के आश्रम को पहुँचे। वहाँ उनको निकटवर्ती सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाने की सलाह दी गयी और चेतावनी कर दी गयी कि लङ्का से लेकर चित्रकूट तक राक्षसों का बड़ा उपद्रव है। सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँच कर राम वहाँ

कुछ दिन रहे और इधर-उधर घूम कर फिर वहीं आ गये। पश्चात् वे वहाँ से चार योजन की दूरी पर अगस्त्य के भाई के आश्रम को गये। फिर वहाँ से अनतिदूर अगस्त्य के आश्रम को जाकर उन्होंने अपने रहने योग्य स्थान का पता लगाया। अगस्त्य ने अपने आश्रम से दो योजन पर गोदावरी नदी के तट पर 'पञ्चवटी' स्थान बताया। वहाँ कुटी बनाकर राम की पार्टी रहने लगी। यहीं से सीता जी को रावण [illegible] पञ्चवटी से थोड़ी दूर पर जटायु ने [illegible] रोका परन्तु उसने गृद्ध के पङ्ख [illegible] पम्पा सरोवर से होते हुए, सागर [illegible] ठेठ लङ्का को जा पहुँचा।"

रा ब. हीरालाल

इनकी शैली में छन्दों की सी अपरिपक्वता है [illegible]

भावुकता है। आपकी भाषा में संस्कृत के साथ अंग्रेज़ी शब्दों का भी असाधारण प्रयोग है। उनके गम्भीर लेखों का गद्य प्रौढ़ और अपरिमार्जित है, किन्तु विषय के निरूपण में कहीं-कहीं अग्राहिता आ गयी है। आपकी आलोचना-प्रणाली में मर्मभेदी आघात रहता है। गुलेरीजी ने एक कहानी भी लिखी है। वह सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है। कहानी की भाषा कैसी चलती हुई है इसका पता नीचे के अवतरण से लग जायगा :—

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहिचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम बीबियों (स्त्रियों) की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया।"

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की टाँगों में चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

आलोचनात्मक भाषा में दूसरे ढङ्ग की शैली है और उसकी रवानी भी दूसरे प्रकार की है। सारांश में, इनकी शैली बड़ी आकर्षक है, और उसमें इनका व्यक्तित्व निहित है। इनके निष्कर्ष जैसे निर्भीक थे शैली भी वैसी ही निर्भीक है। उर्दू-फारसी के शब्द धड़ल्ले से प्रयुक्त किये गये हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह

गुलेरी जी के साथ ही अध्यापक पूर्णसिंह का उल्लेख होता है। इन्होंने माधवप्रसाद मिश्र की भाँति कम लिख कर ही अपनी प्रतिभापूर्ण प्रौढ़ रचना परिलक्षित करा दी। इनकी शैली में भावप्रवर चञ्चलता और अक्लिष्ट संकेतात्मकता रहती है। भाषा सचिक्कण होते हुए भी उक्ति वैचित्र्य से ओत-प्रोत रहती है। वे ऊँची बात कहते हैं और अनोखे ढग से कहते हैं। इनकी भावव्यञ्जना में एक आकर्षक सामञ्जस्य रहता है तथा भावनाओं और विचारों को निश्चित करने का ढग अनूठा और भावुकतापूर्ण होता है। पूर्णसिंह जी के लेख 'सरस्वती' की पुरानी फाइलों में मिल सकते हैं। इनके लेख का एक अंश नीचे दिया जाता है —

आचरण के आनन्द नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्रीभाव फूट पड़ता है। सूर्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्रुतपूर्व सुन्दर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

इस शैली में स्पष्टता का इतना ध्यान नहीं है जितना [illegible] के साथ भाव भड़भड़ाहट का। लेखक भावुकता की [illegible] [illegible] की ओर बढ़ा ले गया है इसीलिए कथन [illegible] हो गया है। इनकी शैली

में उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग है। बाद मे माखनलाल चतुर्वेदी के हाथों मे पड़ कर इनकी शैली बहुत निखर उठी है। उसके बहुत से दोष नष्ट हो गये और उसमे नये मौलिक तथ्यों का प्रवेश हुआ है।

पद्मसिंह शर्मा अपनी तुलनात्मक आलोचनाओं से प्रसिद्ध हो गये हैं। उनमे काव्य की अनुभूति थी। उनकी भाषा में एक अजीब

पद्मसिंह शर्मा

तड़क-भड़क रहती थी और हिन्दी के साथ उर्दू का अभिन्न मिश्रण मिलता था। यह सच है कि कला के वे गहरे अनुशीलक न थे। इसका प्रमाण उनकी आलोचना-पद्धति और उसकी भाषा मे दृष्टिगोचर है। "हाय, हाय' और 'वाह वाह" की बाढ़ आ जाने से उनकी विवेचना प्रणाली सफल नहीं कही जा सकती और न वह विशेष प्रभावात्मक ही है। उनका तथ्यातथ्य-निरूपण अन्तरभेदी न होकर उच्छृङ्खल कहा जायगा। वास्तव मे उनका प्रवेश और क्षेत्र आलोच्य-रचना के शाब्दिक धरातल तक ही है। शब्दों की भावरूपकता अथवा कलाकार की आत्मानुभूति तक पहुँचते पहुँचते उनका भाव-प्रकाशन निर्बल पड जाता है। कवि की प्रशंसा मे वे बहुत कुछ उछल कूद भी करते हैं। इसमे सन्देह नहीं कि तुलनात्मक आलोचना की परिपाटी हिन्दी मे वस्तुत पद्मसिंह शर्मा ही से आरम्भ होती है, किन्तु उनकी आलोचना सर्वमान्य कहीं पर भी न हो पायी है। उनकी शैली में एक अभद्र दुर्गन्ध निकलती है जो वास्तव मे गम्भीर आलोचनात्मक प्रबन्धों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इसका उदाहरण नीचे के अवतरण मे मिल सकता है —

\+ + + + बिहारीलाल भी तो एकही कांइयां ठहरे वह ऐंवे चूकने वाले हैं परन्तु बदलकर मजमून को साफ [illegible]।

\+ + + + +

वाह उस्ताद क्या कहने हैं क्या [illegible] [illegible] पलट दी। कोई पहचान सकता है? बात वही है, [illegible] आलस [illegible]

निराला है। क्या तानकर 'शब्दवेधी' नावक का तीर मारा है? लुटा ही तो दिया। एक 'अनियारेपन' ने धवल कृष्ण-पक्ष वाले सब को एक अनी की नोक में बाँध कर एक ओर रख दिया। और वाहरी 'चितवन'! तुम्हारी चितवन की ताव भला कौन ला सकता है? फिर 'सुन्दरी' और 'तरुणि' में भी कहते हैं, कुछ भेद है। एक वशीकरण का ख़ज़ाना है तो दूसरी खान है। और 'सुजान' तो फिर कविता की जान ही ठहरी। इस एक पद पर तो एँडी से चोटी तक सारी गाथा ही कुर्बान है।"

यह है आपकी आलोचनात्मक भाषा। यहाँ पर हमें "बिना ज़रूरत के जगह जगह चुहलबाज़ी और शाबाशी का महफ़िली नखरे" मिलती है। काशी के 'दीन जी' ने भी आलोचना पद्धति में बहुत हद तक आपका अनुकरण किया है। किन्तु उनके सहज भावमय निबन्धों की भाषा अपेक्षाकृत अधिक संयत और ओज-मयी है। यहाँ पर पद्मसिंह की अन्तिम पुस्तक का एक अंश दिया जाता है।
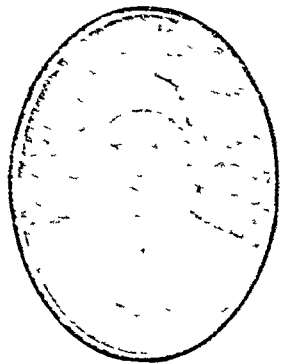
पद्मसिंह शर्मा

'हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी का झगड़ा बड़ी देर से चल रहा है। आज तक इसका फ़ैसला नहीं हुआ कि इनमें से आप [illegible] [illegible] [illegible] कौन सा [illegible] राष्ट्र-भाषा [illegible]

[illegible] है कि [illegible] हिन्दू [illegible] जिसमें [illegible] शब्दों के प्रचुर [illegible] अपेक्षित [illegible] [illegible] के शब्दों का [illegible] [illegible] [illegible] कर [illegible] संस्कृत [illegible] [illegible]

विशुद्धतावादियों के मत में तो 'लालटेन' का प्रयोग करना अशुद्धि के अन्धकार में पड़ना है, उसके स्थान पर वह 'दीप-मन्दिर' या "हस्त-काँच-दीपिका" का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझेंगे।

उर्दू वाले नये नये मुअर्रब और मुफ़र्रस अल्फ़ाज़ तक से गुरेज़ करते हैं और उनके बजाय अरबी और फ़ारसी की मुस्तनद लुगात से इस्तलाहात नौ-ब-नौ से अपने तर्ज़ तहरीर में ऐसा तसन्नो पैदा करते हैं कि उनका एक एक फ़िक़रा 'ग़ालिब' के बाज़ मुश्किल मिस्रों की पेचीदगी पर भी ग़ालिब आ जाता है और बसा औक़ात अल्फ़ाज़ की नशिस्त ऐसी होती है कि जुमले के जुमले इतनी बात के मोहताज होते हैं कि ख़ालिस फ़ारसी (अजमी) शक्ल अख़्तियार करने में सिर्फ़ हिन्दी अफ़आल में तब्दील कर दिया जाय और बस।"

विशुद्ध हिन्दी और फ़सीह उर्दू-ए-मुअल्ला की एक दरम्यानी सूरत का नाम "हिन्दुस्तानी" कहा जाता है, जिसमें सक़ील और ग़ैर-मानूस अरबी फ़ारसी अल्फ़ाज़ और दुरूह तथा दुर्बोध संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों से जहाँ तक हो सके बचने की कोशिश की जाती है और इस पर ध्यान रक्खा जाता है कि नित के कारबार में जो शब्द और मुहावरे बोल चाल में काम आते हैं वही पोथियों में और अख़बारों में भी बरते जायँ।

इन तीनों रूपों में एक-एक कठिनाई है। विशुद्ध हिन्दी और ख़ालिस उर्दू पुस्तकों और समाचार-पत्रों के बाहर, बहुत ही कम काम में आती है। पण्डितों के व्याख्यान और मौलवियों के ख़ुतबे मुश्किल से सुनने वालों की समझ में आते हैं और इनका दायरा बहुत ही महदूद है—अत्र अत्यन्त संकुचित है। हिन्दुस्तानी में यह कठिनाई है कि शास्त्रों के गूढ़ और गहन विषयों पर जब कभी कोई ग्रन्थ या लेख लिखना पड़ता है तो लेखक अपने शब्द-भण्डार को काफ़ी नहीं पाता और अपने 'हिन्दुस्तानी' के दायरे को छोड़ कर

कभी उसे खालिस उर्दू की तरफ और कभी विशुद्ध हिन्दी की ओर झुकना पड़ता है और उसमें परिभाषाएं या इस्तलाहें उधार लेनी पड़ती हैं"।

ऊपर का अंश आपके उस व्याख्यान से लिया गया है जो आपने 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' के आमन्त्रण पर दिया था। वह अब पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का नाम है "हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी" और यह हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में यथेष्ट चर्चा हुई है, किन्तु इसमें वास्तव में उनका स्वतन्त्र अंश बहुत कम है, अधिकांशतः उर्दू के मौलवी मुल्लाओं तथा अन्य विद्वानों के कथन और विचार उल्लिखित हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

उपाध्यायजी की साहित्यिक महत्ता काव्य की काया-पलट कर देने तक ही सीमित नहीं है। आपने गद्य की वर्तमान प्रगति का यथार्थ पर्यवेक्षण कर 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं। अपनी इन रचनाओं से बिलकुल बोलचाल की भाषा की प्रतिष्ठा करके आपने हिन्दी में संस्कृत का बाहुल्य रखने की ओर इशारा कर दिया है। मुहाविरों का सुन्दर प्रयोग करने में उपाध्यायजी का असाधारण अधिकार है। आपकी 'ठेठ भाषा' [illegible]-शून्य तो है ही उसमें ग्रामीणता अथवा [illegible] भी नहीं [illegible] पाया है। इसके स्थान पर वहाँ पद्य की [illegible] प्रवाहित है। आपकी [illegible] में शब्द-बाहुल्य [illegible] नहीं है। सम्भवतः इसी के कारण आपकी शैली में वाक्य-विन्यास [illegible] रहता है। [illegible] नव-[illegible] कैसा हृदयग्राही होता है इसका [illegible] के अवतरण से मिल सकते हैं।

'हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं मगर [illegible] आँख के तारे भी नहीं देते। हम पर लगाकर उड़ना चाहते हैं मगर [illegible] पाँव

भी नही उठते। हम पालिसी पर पालिश करके उसके रङ्ग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालिसी हमारे बने हुए रङ्ग को भी बदरङ्ग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल-जोल का, मगर न जाने कहाँ का खटराग पेट मे भरा पडा है। हम जाति-जाति को मिलाने चलते हैं, मगर ताव अछूतो से आँख मिलाने की भी नही। हम जाति-हित की ताने सुनने के लिए सामने आते हैं, मगर ताने दे देकर कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिन्दू जाति को एक रङ्ग मे रँगना चाहते हैं, मगर जाति-जाति के अपनी-अपनी डफली और अपने-अपने राग ने रही सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं देश को उठाना, पर आप मुह के बल गिर पडते हैं। हमे देश की दशा सुधारने की धुन है, पर आप सुधारने पर भी नही सुधरते। हम चाहते हैं जाति की कमर निकालना, मगर हमारे जी की कसर निकाले भी नही निकलती। हम जाति को ऊँचा उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नही। हम चाहते हैं जाति को जिलाना, मगर हमे मर मिटना आता ही नही।"

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पुनरुक्ति के झञ्झावात मे विवश अनुप्रास और यमकपूर्ण होने पर भी आपकी शैली इतनी भाव-प्रधान है कि आलङ्कारिक किरकिराहट उत्पन्न नही हुई है।

ऊपर वाले अवतरण को निम्नलिखित अवतरण से मिलाइये —

"कबीर साहब की शिक्षाओ को आप पढिये, मनन कीजिये उनके मिथ्याचार-खण्डन के अदम्य और निर्भीक भाव को देखिये, उनकी सत्यप्रियता अवलोकन कीजिये। उनमे आपको अधिकाश

कि यदि हमने वास्तव मे धर्म के साधनों को आडम्बर बना लिया है, तो किसी न किसी के मुख से हमको ऐसी बाते सुननी ही पड़ेगी। दूसरे यह कि यदि ये अधिकांश अमूलक हैं, तो भी कोई क्षति नही।"

इस शैली की फैलाव-प्रियता हट नही सकी। इसमे सम्भाषणपने का प्राबल्य है। समझदारी से लेखनी नही चली है। जो कुछ भी अनर्गल ध्यान मे आया है उसकी भरती की गयी है। विषय और शैली दोनों मे कच्चापन है।

'कबीर वचनावली' के उपोद्घात स्वरूप मे आपने जो भूमिका लिखी है उसमे अधिकांश मे 'प्रिय-प्रवासत्व' के आधिक्य से बड़ा रूखापन और फैलाव आ गया है। ऐसी शैली का परित्याग करके उपाध्याय जी ने अच्छा ही किया। इधर कुछ दिनों से उपाध्याय जी ने गद्य और पद्य दोनों ही मे मुहावरो का चमत्कारपूर्ण प्रयोग करने का बीडा उठा लिया है।

मन्नन द्विवेदी का नाम उन लेखकों मे स्मरणीय है जो अपनी प्रखर प्रतिभा लेकर गद्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए, किन्तु दैवयोग से वे थोड़ा ही लिख पाये। आप ब्रजभाषा के अच्छे कवि और हिन्दी के प्रौढ गद्य लेखक थे।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

आपका लिखा गद्य, मिश्रित भाषा का बहुत अच्छा रोचक उदाहरण है। आप संस्कृत और फारसी के साथ ठेठ शब्दों का व्यवहार करते हुए सुन्दर मुहावरे-बन्दी और वाक्यावतरण की छटा दिखा देते थे। आपकी शैली मे असाधारण ओज और प्रबल वर्णन-शक्ति है। आप अपनी व्यञ्जना-प्रणाली को स्थान-स्थान पर उपयुक्त दृष्टान्तों द्वारा प्रगल्भ और मार्मिक बना देते थे। आपकी भाषा की उद्दारता वस्तुत. भाव-प्रकाशन के अनुरूप ही है उसमे राजा शिवप्रसाद की सी कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं आने पायी है। वर्णन मे प्रवाह और कथन मे आवेश, यही आपकी मिश्रित शैली का हेतु है। इसके अतिरिक्त

आपके विषय-निरूपण की विधि में भी आपकी मानसिक शक्ति प्रकट है। "मुसलमान राज्य के इतिहास" से लेखक की मनन-शीलता स्पष्ट होती है, तथा वह इस बात का भी प्रमाण है कि आपका तत्त्व-निरूपण इतिहास के बाह्य उपादानों की अपेक्षा चरित्र की अन्तर-वृत्तियों के किस प्रकार अधिक निकट है। आपका वाग्-विन्यास भी द्विवेदीजी की भाँति ही रोचक और सजीवता लिये है। आपकी शैली में न तो शुद्धि-वादी संस्कृतज्ञों की शाब्दिक दुरूहता ही रहती है और न अनुचित रूप से फारसी का ही मिश्रण। आपने जो कुछ थोड़ा सा लिखा है उसमें समीचीन और सचिक्कण गद्य के दर्शन मिल जाते हैं, तथा यह आभास भी मिलता है कि आपमें एक धुरन्धर गद्य लेखक के लक्षण और गुण थे। साथ ही जो दो चार छोटी-छोटी जीवनियाँ आपने लिखी हैं उनमें असाधारण और सरल चलता-पन है। महादेव गोविन्द रानाडे की जीवनी भी इसी शैली में है।

गणेश शङ्कर विद्यार्थी

मुझे इनके साथ सम्पादन-कार्य का अवकाश मिला है। इनके पतले शरीर से भावुकता छलकती थी। इनकी लेखनी में, इनकी वाणी में ओजगुण समान रूप से मौजूद था। इनकी लेखन-शैली सम्पूर्ण

कुछ राजनैतिक ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। उन्होंने कुछ विचारात्मक लेख भी लिखे हैं, और उनपर प्रतापनारायण मिश्र का पूर्ण प्रभाव दिखायी पड़ता है, परन्तु भाषा में उन्होंने अपना आदर्श महावीर प्रसाद जी को रक्खा। फारसी शब्दों की अधिकता और भावात्मकता का गहरा प्रभाव होने के कारण वे महावीर प्रसाद द्विवेदी से भी स्पष्ट रूप से पृथक दिखायी देते हैं। किन्तु उनका कार्यक्षेत्र राजनीति था साहित्य नहीं। शैली की उपरोक्त विवेचना से ऊपर का अवतरण प्रतिनिधि तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु किसी अंश तक उनकी शैली के तत्व उसमें मिल सकेंगे। उनकी कृतियों में सर्वत्र स्पष्टता उनकी एक विशेषता है। बहुधा यह देखा गया है कि भावात्मक शैली के लेखकों के अभिव्यञ्जन में कुछ दुरूहता, अस्पष्टता और क्रमहीनता आ जाती है, परन्तु यह बात गणेश शङ्कर में बिलकुल नहीं है।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द का साहित्यिक क्षेत्र निश्चित है। वे पहले उर्दू में लिखते रहे, बाद में हिन्दी की ओर झुके। उन्होंने मर्म-स्पर्शी कहानियाँ और सुन्दर उपन्यास लिख कर हिन्दी की जो सेवा की है वह अनुपम और अतुलनीय है। प्रेमचन्द जी ने जितना अकेले लिखा है उतना कई उपन्यासकार मिल कर भी नहीं लिख सके। उत्कर्ष की दृष्टि से और विशदता की दृष्टि से, प्रेमचन्द अपने वर्ग और अपने युग के हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी और उपन्यास लेखक हैं। उनकी कृतियों को अन्य भाषाओं में अनुवादित होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। इधर उनके कुछ नाटक भी क्षेत्र में आये हैं। कुछ लोगों का कथन है कि उनमें प्रेमचन्द को सफलता नहीं मिली। हम इस कथन से पूर्ण-रूप से सहमत नहीं।

प्रेमचन्द जी के उपन्यास हिन्दी की स्थायी सम्पत्ति हैं। आप हिन्दी के प्रथम उत्कृष्ट मौलिक उपन्यास-लेखक हैं। वैसे तो

जीता जागता मनोभाव है. इसका भी चित्रण इसी मुहावरेदार भाषा में देखिये :—

"दुनिया सोती थी. पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे ही देखिये बालक, वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिये. वही पण्डित जी के इस व्यौहार पर टीका-टिप्पणी करता था। निन्दा की बौछार हो रही थी. मानो संसार से अब पाप का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला. कल्पित रोजनामचे भरने वाला अधिकारीवर्ग. रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग. जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार सब के सब देवताओं की भाँति गरदनें हिला रहे थे"।

प्रकृति वर्णन की शब्द-योजना देखिये—

"वहाँ अमावस्या की रात्रि थी। स्वर्गीय दीपक भी धुँधले हो चले थे। उनकी यात्रा सूर्यनारायण के आने की सूचना दे रही थी।"

दरिद्रता के चित्रण में अनात्मीयता के साथ रागात्मिकता का कैसा समन्वय है।

"प्रातःकाल महाशय प्रवीण ने बीस दफा उबाली हुई चाय का प्याला तैयार किया और बिना शक्कर और दूध के पी गये। यही उनका नाश्ता था। महीनों से मोटी [illegible] चाय न मिली थी। [illegible] पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] ही है।

मनोभाव के सूक्ष्म विश्लेषण के चित्र [illegible] [illegible]

थी, इसमें उसे सन्देह था।"

'सात्विक' भावों के वर्णन में भी उनका शब्द-कोष भरा पूरा और वेगवान है। एक उदाहरण देखिये:—

"अरब सिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। उसकी आँखें सुर्ख हो गयीं गरदन की नसें तन गयीं मुख पर अलौकिक तेजस्विता की आभा दिखायी दी। नथुने फड़कने लगे। ऐसा मालूम होता था कि उसके मन में भीषण द्वन्द्व हो रहा है और वह अनन्त विचार-शक्ति से अब अपने मनोभावों को दबा रहा है। दो तीन मिनट तक वह इसी उग्र अवस्था में बैठा धरती की ओर ताकता रहा। अन्त को अवरुद्ध कंठ से बोला—नहीं, नहीं, शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। आह! जालिम! तू जानता है मैं कौन हूँ। मैं उसी युवक का अभागा पिता हूँ जिसकी आज तूने इतनी निर्दयता से हत्या की है। तू जानता है तूने मुझ पर कितना बड़ा अत्याचार किया है? तूने मेरे खानदान का निशान मिटा दिया है? मेरा चिराग गुल कर दिया।"

उर्दू की रवानी इनके कथोपकथन को सजीव बनाये रहती है। कथानक में घटनाबहुलता और विषय का मोड़ देने में स्वाभाविकता और चातुरी रहती है। पाठकों को एक उलझन में डालकर भी उनका कौशल [illegible] में बढ़ रहता है। [illegible] इनके वाक्य [illegible] [illegible] [illegible] विचार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धार्मिक [illegible] सैद्धान्तिक [illegible] सूचक [illegible] है। [illegible] करता है।

आपकी लेखनी का सम्मान बहुधा यथार्थवाद को है और

कहानी प्रगति से भी वे मेल खा जाती हैं और युगधर्म का एक स्वाभा-
विक आवरण उन पर रहता है। यही कारण है कि सुदृढ़ और
सुस्वीकृत नैतिक आदर्शों को सन्दिग्ध करने वाली विप्लव-कारिणी-
वृत्ति का उनकी आख्यायिकाओं में नितान्त अभाव है। वे आर्य-समाजी
हैं, विधवा विवाह के पक्षपाती हैं, बाल-विवाह के प्रतिकूल हैं। वे अपने
ढंग के सुधारक हैं परन्तु वह सुधार लोकधर्म के एक निश्चित स्वीकृति
भित्ति पर आश्रित है। जीवन के सारे पहलुओं को हिलता हुआ देखना,
सारे आदेशों की सन्देह-भरी दृष्टि से समीक्षा करना, सम्पूर्ण पूर्णपन में
नितान्त अपूर्णता समझना, परवशता में कमी अनुभव करना, इस युग की
चिन्तना की विशेषताएँ हैं। इतनी हद तक प्रेमचन्द युग का साथ नहीं दे
सके। उनकी कृतियों में यही कमी है और यही उनका पिछड़ापन है।

छोटी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों और कविताओं में सर्वत्र
प्रसाद जी की शैली में एक ही रवानी है। वह संस्कृत के तत्सम् शब्दों
से लदी हुई मन्द मन्द चलती है। कहीं कहीं पर
नाटकों में यह शैली अस्वाभाविक भी मालूम पड़ती

जयशंकर प्रसाद

है, परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि उनके गहरे दार्शनिक विचारों
को और उनके तीव्र अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने के लिए यह शैली कृत्रिम
है अथवा उपयुक्त नहीं है। प्रसाद जी ऊँचे कलाकार हैं और इन्हें अपनी
अभिव्यक्ति को सवाँरने की आदत है। आपकी भाषा की दुरूहता
कविता को और भी कठिन बना देती है। पुरातत्व के अच्छे विद्वान
होकर और संस्कृत साहित्य का अच्छा अध्ययन करने के कारण,
तत्सम् स्वरूप हिन्दी के शब्द इनकी भाषा के अङ्ग हो रहे हैं।
आपकी लेखन शैली पर कदाचित् रवीन्द्र दर्शन का प्रभाव
पड़ा है।

संस्कृत शब्दों से विभूषित प्रसाद जी की शैली में संस्कृत शैली
के दोष नहीं हैं। न उनमें आवश्यकता से बड़े वाक्य हैं और न लंबे
'समस्तपद'। जहाँ एक ओर अपनी शैली के कारण [illegible]

आपके सुन्दर शरीर से अभिन्न हो कर हम लोगों की आँखो में भ्रम उत्पन्न कर देता है. वैसे ही आपको दुःख के झलमले अचल से सिसकते हुए संसार की पीड़ा का अनुभव स्पष्ट नहीं हो पाता। आपको क्या मालूम कि बुद्धू के घर की काली-कलूटी हाँडी भी कई दिन से उपवास कर रही है। छुन्नू मूँगफली वाले का एक रुपये की पूँजी का खोनचा लड़को ने उछल कूद कर गिरा भी दिया और लूटकर खा भी गये। उसके घर पर सात दिन की उपवासी करुण बालिका मुनक्के की आशा में पलके पसारे बैठी होगी या खाट पर पड़ी होगी।"

रस से सराबोर स्थलो की भाषा वैसे ही बोझीली है जैसे दार्शनिक मीमांसा की भाषा। सर्वत्र शैली की एक ही प्रथा है। इस विषय में अजातशत्रु का भी निम्नलिखित उद्धरण पढ़ने योग्य है :—

"विरु०—कोमल पत्तियों को जो अपनी डालों में निरीह लटका करती हैं प्रभंजन क्यों झिंझोड़ता ?

"वासवी—उसकी गति है। वह किसी का कहना नहीं कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो. जो साहस करता है उसे हिलना पड़ता है। नाथ! समय भी इस तरह चला जा रहा है। उसके लिए पहाड़ और पत्ती बराबर है।

विरु० फिर उसकी गति तो सम नहीं है। ऐसा क्यों ?

वासवी—यही समझने के लिए बड़े बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्याएँ की है। फिर भी प्रत्येक नियम में अपवाद लगा दिये है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर है या [illegible] पर सम्भवत इसे ही लोग बवण्डर कहते है

विरुद्धक तब तो दाव 'प्रत्येक [illegible] चलने के मूल में यही बवण्डर है। सच तो यह है कि विश्वभर में स्थान स्थान पर वात्याचक्र है। जल में उसे भँवर कहते हैं स्थल पर उसे बवण्डर कहते है राज्य में विप्लव समाज में उच्छृङ्खलता और धर्म में पाप कहते

कहा जाता है कि आपकी कहानियों की सफलता का आधार पात्रों के कथोपकथन हैं। आपकी कहानी का पात्र यदि मुसलमान है तो उसके सम्भाषण में हमें मुस्लिम संस्कृति की शिष्टता मिलेगी, यदि वह एक वेश्या है तो उसकी कलुषित-वृत्ति का यथार्थ निदर्शन मिलेगा और यदि पात्र एक मद्यप है तो उसके विकृत-मस्तिष्क की सुस्पष्ट रूपरेखा और विक्षेप-जनित स्वभावतः असंगत वाक्यावली के दर्शन होते हैं। कौशिक जी बहुज्ञ हैं और वे मनुष्य की अन्तःवृत्तियों का अध्ययन और अनुभव रखते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आपके कथोपकथन अत्यन्त उत्कृष्ट, नितान्त मौलिक, स्वाभाविक और सजीव होते हैं। हम साहस पूर्वक कह सकते हैं कि कथोपकथन लिखने में कौशिक जी अद्वितीय हैं।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

आप अंग्रेजी तथा बंगला साहित्य के अच्छे जानकार और फारसी के विद्वान हैं। प्रेमचन्द जी की भांति आपने भी आरम्भ में उर्दू में ही अपनी प्रतिभा चमत्कृत [illegible] 'कला [illegible]' आपकी अनेक कहानियाँ [illegible] हिन्दी में [illegible] कहते हैं कि हिन्दी [illegible] में प्रवाह और प्रभावोत्पादक [illegible] से परिचित और अभ्यस्त होना आवश्यक है। आपने [illegible] निबन्ध और वर्णन विषयक पुस्तकें भी लिखी हैं।

'दुबे जी की चिट्ठी' के नाम से आपने व्यंग्य-मिश्रित हास्यरस के बहुत से लेख लिखे हैं। ये लेख पुस्तकाकार दो भागों में

एक वर्ग है—धनी मनचले जवान, और इनकी भी सख्या न्यून है। इनकी "लम्बी दाढ़ी" यद्यपि इस बात की परिचायक है कि लेखक में हास्य-सृजन की शक्ति और प्रतिभा है, किन्तु खेद है कि इनकी गति अधोगामिनी ही रही है। इस दिशा के दूसरे लेखक मिर्ज़ा अज़ीम-बेग चगताई, यद्यपि हास्यपूर्ण अच्छी कहानियाँ लिखते हैं, किन्तु इनकी लेखन-शैली में उर्दू का प्राधान्य रहता है। हरीशङ्कर शर्मा, नवजादिक लाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय, जगन्नाथ प्रसाद और अन्नपूर्णानन्द हास्य-रस के अच्छे लेखक हैं। साहित्य के इस विभाग को इन्होंने विशेष रूप से अपनाया है। इनके विपरीत कौशिक जी की लेखनी, अनुशासित गति से, फूलों के साथ व्यङ्ग के भी ढेले फेंकती हुई, शालीनता की मेड़ के भीतर रहकर, निर्दिष्ट पथ पर बढ़ती है। इनकी हास्य की शैली में हमें प्रतापनारायण मिश्र की ज़िन्दादिली की झलक मिलती है। इन्होंने उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त कई रंग-मंच के योग्य सुन्दर नाटक और कुछ प्रहसन भी लिखे हैं। विषय दृष्टि से कौशिक जी चाहे पिछड़े हुए कहानी लेखक हो जायें परन्तु भाषा की दृष्टि से आप सफल रहे हैं।

इस युग के उत्कृष्ट लेखकों में भारतीय आत्मा का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी साहित्य ने अभी उनके कवि के रूप में ही दर्शन किये हैं परन्तु उन्होंने गद्य भी बहुत लिखा है। वह बहुत प्रकाशित और अप्रकाशित है। उनका [illegible] कविता से कहीं अधिक [illegible] और [illegible] है। चतुर्वेदी जी का गद्य क्या है वह ढीले छन्द का पद्य है। हिन्दी-उर्दू शब्दों का [illegible] प्रयोग किया गया है। उनका अप्रकाशित [illegible] साहित्य में [illegible] होगा। उनके [illegible] 'साहित्य-देवता' विषय और अभिव्यंजन दोनों ही दृष्टि से हिन्दी की अनुपम निधि है। साहित्य-देवता का एक भाग नीचे उद्धृत किया जाता है। इसके

माखन लाल चतुर्वेदी

सचमुच, पत्थर की कीमत बहुत थोड़ी होती है, वह बोझीली ही अधिक होती है।

बिना बोझ के छोटे पत्थर भी होते हैं, जिनमें से एक एक की क़ीमत पचासों हाथियों से नहीं कूती जाती। परन्तु क्या ?

परन्तु क्या ?

मेरे प्रियतम, तुम वह मूल्य नहीं हो, जिसकी, अभागे गाहक की अड़चनों को देखकर, अधिक से अधिक माँग की जाती है।

हाँ, तो तुम्हारा, चित्र खींचना चाहता हूँ। मेरी कल्पना की जीभ को लिखने दो, क़लम की जीभ को बोल लेने दो। किन्तु, हृदय और मसिपात्र दोनों ही काले हैं। तब मेरा प्रयत्न, चातुर्य का अर्ध-विराम, अल्हड़ता का अभिराम, धवलता का गर्व गिराने वाला केवल श्याम मात्र होगा। परन्तु यह काली बूँदें, अमृतबिन्दुओं से भी अधिक मीठी, अधिक आकर्षक, और मेरे लिए अधिक मूल्यवान हैं। मैं अपने आराध्य का चित्र जो बना रहा हूँ।

× × × ×

कौन सा आकार दूँ? तुम मानव हृदय के सुख संस्कार जो हो! चित्र खींचने की सुध कहाँ से लाऊँ? तुम अनन्त जाग्रत आत्माओं के ऊँचे पर ठहरे स्वप्न जो हो! मेरी काली कलम का बल समेटे नहीं सिमटता। तुम कल्पनाओं के मन्दिर में बिजली की व्यापक चकाचौंध जो हो! [illegible] नव-[illegible] के फलों के और लड़ाकू सिपाहियों के रक्त-बिन्दुओं के [illegible] [illegible] [illegible] तुम ने, वाणी के बराबर से अन्तरात्मा के निवासी का [illegible] हो। [illegible] पर पर लहरों से खेलते हुए, [illegible] के [illegible] और [illegible] से खेलता, पर पहाड़ियों, [illegible], और लताओं तक को अपने स्पन्दन से नहलाये हुए।

वेदनाओं के विकास के संग्रहालय! तुम्हें किस नाम से पुकारूँ? मानव-जीवन की अब तक पनपी हुई महत्ता के मन्दिर, ध्वनि की

खीर है। सिपहसालार, तुम, देवत्व को मानवत्व की चुनौती हो। हृदय से छन कर, धमनियों में दौड़ने वाले रक्त की, दौड़ हो और हो उन्माद के अतिरेक के रक्त-तर्पण भी। आह कौन नहीं जानता कि तुम कितनों ही की वंशी की धुन हो, धुन वह जो गो-कुल से उठकर विश्व पर अपनी मोहनी का सेतु बनाये हुए है। काल की पीठ पर बना हुआ वह पुल, मिटाये मिटता नहीं, भुलाये भूलता नहीं। ऋषियों का राग, पैगम्बरों का पैगाम, अवतारों की आन, युगों की चीरती, किस लालटेन के सहारे, हमारे पास तक आ पहुँची? वह तो तुम ही परम प्रकाश—स्वयं प्रकाश। और आज भी कहाँ ठहर रहे हो? सूरज और चाँद को अपने रथ के पहिये बना, सूक्ष्म के घोड़ों पर बैठे, बढ़े ही तो चले जा रहे हो प्यारे! ऐसे समय हमारे सम्पूर्ण युग का मूल्य तो, मेल ट्रेन में पड़ने वाले छोटे से स्टेशन का सा भी नहीं होता। पर इस समय तो, तुम मेरे पास बैठे हो। तुम्हारी एक मुट्ठी में भूतकाल का देवत्व छटपटा रहा है,—अपने समस्त समर्थकों को लेकर, दूसरी मुट्ठी में, विश्व का विकसित तरुण पुरुषार्थ विराजमान है। बलि के नन्दन में परिवर्तित स्वरूप, कुञ्जविहारी, आज तो कल्पना की फुलवारियाँ भी, विश्व की स्मृतियों में तुम्हारी तर्जनी के इशारों पर लहलहा रही हैं।

तुम नाथ नहीं हो इसीलिए कि मैं अनाथ नहीं हूँ। किन्तु हे अनन्त पुरुष यदि तुम विश्व की कालिमा का बोझ सम्हालने मेरे घर न आते तो ऊपर आकाश भी होता नीचे जमीन भी नदियाँ भी बहतीं सरोवर भी लहराते परन्तु मैं और चिड़िया, दोनों छोटे-छोटे जीव-जन्तु और स्वाभाविक अन्न कण बीन कर अपना पेट भरते होते। मैं मेरे वैभव में भी तृणों पर [illegible] बना होता। चीते सा गर्वीला, मोर सा कूकता और कोयल से [illegible] भी रहता। परन्तु मेरा और विश्व के हास्यापन का उतना ही सम्बन्ध होता, जितना, नर्मदा के तट पर हरसिंगार की वृक्ष-राजि में लगे हुए

देवता वह दिन आने दो, स्वर सध जाने दो।"

इस गद्य-खंड की भित्ति दार्शनिकता और धरातल भावुकता है। उर्दू, हिन्दी, अँग्रेजी इत्यादि शब्द जँचे हुए बैठे हैं। जो कुछ भी दुरूहता दिखायी देती है वह शैली के कारण नहीं, विषय-गाम्भीर्य के कारण है। चतुर्वेदी जी की लेखनी का एक दूसरा चमत्कार नीचे दिया जाता है।

मुरलीधर! "क्या तुम संगीत हो? तुम मेरे संगीत नहीं हो। अलापों की तरह तुम मेरी नसों पर लौटते कहाँ हो? माना कि तुम्हारी कृपा के बादल बेइख्तियार बरस पड़ते हैं। परन्तु उस समय तुम मेरी मलार नहीं बने होते।......

'तब क्या तुम मेरी मृदङ्ग हो?'

हाँ तुम मेरे प्रहार सह लेते हो, किन्तु मेरे बन्धनों में जकड़े जाने के लिए कब तैयार होते हो? मीठे बोलते हो; परन्तु मुँह पर आटा लगाने की रिशवत उस मधुराई के बदले तुम्हें कब देनी होती है? और सब कुछ सही, मैं तुम्हारी वाणी पर यह इलजाम कैसे [illegible] कि तुम बाहर बोल रहे हो, किन्तु अन्तःकरण [illegible] तुम्हारी वाणी पर थोथेपन का आरोप कर सकता हूँ?

[illegible] विश्व-स्वीकृत [illegible]

परन्तु [illegible] तुम [illegible] स्वर [illegible] तो तुम्हारे [illegible] भी, [illegible] हो।"

मेरी कथा सुनो, मुझसे अनुराग करो, मुझे मानो, मेरी शरण आओ। तारन-तरन मैं हूँ, मङ्गल-करण मैं हूँ, पुण्याचरण मैं हूँ। मैं रुपया हूँ।"

कैसी सादी और सुथरी भाषा है। इसमें एक विशेष हलकापन है जो असर करने में कम नहीं। आपकी शैली इस बात का प्रमाण है कि आपकी लेखनी की उग्रता आपके हृदय के चीत्कार का ही परिवर्तित स्वरूप है। आप आजकल की दुनिया का बड़ा विपाक्त अनुभव प्रकट करते हैं, समाज का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हैं। उग्रजी एक तेश के साथ अपनी लौह-लेखनी की नोक से समाज की आँखें निकाल लेने की धमकी देते हुए हमारा नेत्रोन्मीलन करते हैं। वास्तव में हमारी प्रचलित विभीषिकाओं ने ही उन्हें इतना उग्र बना दिया है।

उग्रजी की उग्रता का कारण बहुत कुछ वे दिन हैं जब देश में असहयोग आन्दोलन की प्रबल आँधी बह रही थी। आपकी रचनाओं में यदि कहीं पर आपको वक्तृत्व का चमत्कार मिलेगा तो कहीं भावोद्वेग का अत्यन्त प्रबल निदर्शन और अन्यत्र मनमोहक भावुकता का हिलोरें लेता हुआ रत्नाकर। नित्य की बोलचाल की भाषा कितनी सुन्दर और प्रभावशालिनी हो सकती है, इसका पता आपके वाक्य-समूह देते हैं। देखिए —

"है कोई ऐसा माई का लाल जो हमारे समाज के नीचे से ऊपर तक सड़ांध नष्ट करने के लिए कफ़न पर हाथ रख कर सत्य के तेज से मस्तक तान कर इस पुरस्कार के अधिकारी [illegible] यह कहने का दावा करे कि उसने जो कुछ किया है [illegible] है [illegible] ऐसा पागल [illegible] काजल-[illegible] [illegible] है? अगर कोई हो तो साहस से सामने आवे [illegible] और [illegible] धप्पड़ मार [illegible] हाथ के [illegible] से उसके प्रहारों के [illegible] के नीचे हृदय-पावड़े डालूँगा, मैं उसके अभिशापों को सिर नवा के पर धारण करूँगा—सम्भाल लूँगा।"

क्या जगत के बाहर है ?

मुझे यह सोचकर अचरज होता कि आनन्द-कन्द-मूलक इस विश्व-वल्लरी में मुझे आनन्द का अणु मात्र भी न मिले। हा ! आनन्द के बदले में रुदन और शोच का परिताप कर रहा था।

अन्त को मुझसे न रहा गया। मैं चिल्ला उठा ! आनन्द ! आनन्द ! कहाँ है आनन्द ? हाय ! तेरी खोज में मैंने व्यर्थ जीवन गँवाया। बाह्य प्रकृति ने मेरे शब्दों को दुहराया, किन्तु मेरी आन्तरिक प्रकृति स्तब्ध थी। अतएव मुझे अतीव आश्चर्य हुआ। मुझसे पूछ उठा, 'क्या कभी अपने आप मे भी देखा था' ? मैं अवाक् था।

राय कृष्णदास

सच तो है। जब मैंने इसी विश्व के एक अश को अपने आप तक में न खोजा था, तब मैंने यह कैसे कहा कि समस्त सृष्टि छान डाली ? जो वस्तु मैं ही अपने आपको न दे सका, वह भला दूसरे मुझे क्यो देने लगे ?

परन्तु यहाँ तो जो वस्तु मैं अपने आपको न दे सका था, वह मुझे अखिल ब्रह्माण्ड से मिली और जो मुझे अखिल ब्रह्माण्ड से न मिली

जाओ और उसकी मोहनी छवि निरखो। जेठ-बैसाख की कड़ी धूप में मज़दूर के पसीने की टपकती हुई बूँदों में उस प्यारे राम को देखो। किसी धूल भरे हीरे की कनी में उस सिरजनहार को देखो। जाओ, पतित पद-दलित अछूत की छाया में उस लीला-विहारी को देखो।

× × ×

तुम न जाने कहाँ उसे खोज रहे हो? अरे भाई यहाँ वह कहाँ मिलेगा? इन मन्दिरों में वह राम न मिलेगा। इन मसजिदों में अलाह का दीदार मुश्किल है। इन गिरजों में कहाँ परमात्मा का वास है? इन तीर्थों में वह मालिक रमने का नहीं। गाने-बजाने से भी वह रीझने का नहीं। अरे इन सब चटक-मटक में वह कहाँ? वह तो दुखियों की आह में मिलेगा। गरीबों की भूख में मिलेगा। दीनों के दुःख में मिलेगा। सो तुम वहाँ खोजने जाते नहीं। यहाँ व्यर्थ फिरते हो।

दीनबन्धु का निवास-स्थान दीन हृदय है। दीन-हृदय ही मन्दिर है, दीन-हृदय ही मसजिद है, दीन-हृदय ही गिरजा है। दीन-दुर्बल का दिल दुखाना भगवान का मन्दिर ढहाना है। दीन को सताना सबसे भारी धर्म-विद्रोह है। दीन की आह समस्त धर्म-कर्मों को भस्मसात् कर देने वाली है। सन्तवर मलूकदास ने कहा है—

'दुखिया जनि कोइ दुखिये, दुखिये अति दुख होय।
दुखिया रोइ पुकारिहै, सब गुड़ माटी होय॥"

दीनों को सता कर, उनकी आह से कौन मूर्ख अपने स्वर्गीय जीवन को नारकीय बनाना चाहेगा? कौन ईश्वर-विद्रोह करने का दुस्साहस करेगा? गरीब की आह भला कभी निष्फल जा सकती है—

"तुलसी हाय गरीब की कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे बैल के चाम सों, लोह भस्म है जाय॥

और की बात हम नहीं जानते, पर जिसके हृदय में थोड़ा-सा भी प्रेम है, वह दीन-दुर्बलों को कभी सता ही नहीं सकता। प्रेम निर्दय कैसे हो सकता है? उसका हृदय तो दया का आगार होता है। दीन

इसमें सन्देह नहीं कि अत्यन्तिक विरहाशक्ति ही प्रेम की सब में ऊँची अवस्था है। प्रेम की परिपुष्टि विरह से ही होती है। विरह एक तरह का पुट है। बिना पुट के वस्त्र पर रङ्ग नहीं चढ़ता। सूरदास जी ने क्या अच्छा कहा है—

ऊधो, विरहौ प्रेम करै।
ज्यों बिनु पुट पट गहै न रङ्गहि, पुट गहे रसहि परै॥

जब तक बड़े ने अपना तन, अपना अहङ्कार नहीं जला डाला, तब तक कौन उसके हृदय में सुधा-रस भरने आयेगा? विरहाग्नि में जलकर शरीर मानो कुन्दन हो जाता है। मन का वासनात्मक मैल जलाकर उसे विरह ही निर्मल करता है—

बिरह-अगिन जरि कुन्दन होई। निर्मल तन पावै पै सोई॥

—उसमान

बिना विरह के प्रेम की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इसी तरह बिना प्रेम के विरह का भी अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है वहाँ विरह है? प्रेम की आग तो विरह-पवन ही प्रज्वलित करता है। प्रेम के अङ्कुर को विरह-जल ही बढ़ाता है। प्रेम-दीपक की बाती को यह विरह ही उकसाता रहता है।

वियोगी हरि

गद्य-पद्य समन्वित कैसा काव्यमय प्रवाह है। खुला हुआ हृदय असीम प्रियतम की जुस्तजू में एक अजीब अभिव्यञ्जन से बह निकला है। दूसरा उद्धरण लीजिये—

किसानों और मजदूरों की टूटी-फूटी झोंपड़िया में ही प्यारा गोपाल बंशी बजाता मिलेगा। वहाँ
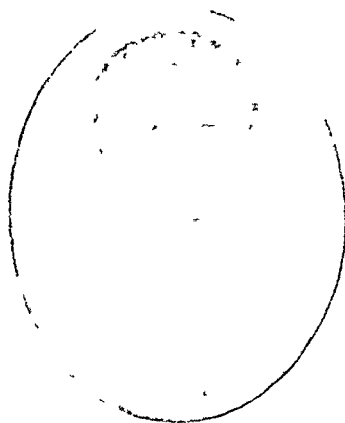
को वह अपनी प्रेममयी दया का सबसे बड़ा और पवित्र पात्र समझता है। दीन के सकरुण नेत्रों में उसे अपने प्रेमदेव की मन-मोहिनी मूर्त्ति का दर्शन अनायास प्राप्त हो जाता है। दीन की मर्म-भेदिनी आह में उस पागल को अपने प्रियतम का मधुर आह्वान सुनायी देता है। इधर वह अपने दिल का दरवाज़ा दीन-हीनों के लिए दिन-रात खोले खड़ा रहता है और उधर परमात्मा का हृदय-द्वार उस दीन-प्रेमी का स्वागत करने को उत्सुक रहा करता है। प्रेमी का हृदय दीनों का भवन है, दीनों का हृदय दीनबन्धु भगवान् का मन्दिर है और भगवान का हृदय प्रेमी का वास-स्थान है। प्रेमी के हृदेश में दरिद्रनारायण ही एक मात्र प्रेम-पात्र है। दरिद्र-सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है। दीन-दयालु ही आस्तिक है, ज्ञानी है, भक्त है, और प्रेमी है। दीन-दुखियों के दर्द का मर्मी ही महात्मा है। ग़रीबों की पीर जाननेहारा ही सच्चा पीर है। कबीर ने कहा है—

"कबिरा" सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर॥"

भक्तिभाव के अलौकिक उत्कर्ष ने असीम में सोहाग प्राप्त करके जिस सरस्वती के प्रवाह की सृष्टि की है वियोगी जी की निजी राष्ट्रीय भावना ने उसे एक दूसरा रूप दे दिया और दीन-बन्धु के लिए की गयी पुकार में भारतीय दीनों के आर्त्तनाद का चित्र खड़ा किया गया है। यह वह साम्यवाद है जिसका धरातल इस लोक से ऊपर उठा हुआ है। इसीलिए इस शैली में भी एक प्रकार का साम्यवाद है। वियोगी हरि की अन्योक्ति-प्रियता का एक उदाहरण देखिये—

'अरे भैया यहीं सर विश्राम तो कर ले। इस पेड़ की डाल पर अपनी पोटली टाँग दे और बैठकर दो घूँट ठंडा पानी पी ले। कहाँ से आ रहा है भैया? पसीने से लथपथ हो रहा है। साँस पेट में नहीं समाती। पैर सूज गये हैं। कलेजा भूख के मारे मुँह को आ रहा है। अभी और कहाँ तक जाना है भाई?'

"क्या पूछते हो ? कुछ पता नहीं, कहाँ तक जाना है ?"

"ऐ ! यह कैसी बात ? कुछ पता नहीं !

"हाँ भाई कुछ पता नहीं। चलते चलते न जाने कितने दिन हो गये पर अभी तक मुझे यह मालूम नहीं कि मैं किधर जा रहा हूँ। अनेक नगर, गाँव, खेड़े, नदी, नाले, पहाड़ टीले, जंगल पार करके जब मैं आगे नज़र फेंकता हूँ तब अनन्त क्षितिज-रेखा ज्यों की त्यों ही दिखायी देती है। कभी कभी तो मैं जहाँ से चलता हूँ वहीं फिर घूम-घाम कर आ पहुँचता हूँ। कोई मुझे मेरा पता भी ठीक ठीक नहीं बतलाता। संगी-साथी भी अब तक कोई मन का नहीं मिला। गठरी के बोझ के मारे गर्दन झुक गयी है सिर फटा जाता है। टेकने की लाठी भी गिर गिर जाती है। बड़ी आफ़त है। क्या करूँ, क्या न करूँ !"

"इस पोटली में क्या क्या है ?

"सुन कर हँसोगे। सिवा कंकड़-पत्थर के रखा ही क्या है !"

"तो फेंक क्यों नहीं देते ?"

"कैसे फेंक दूँ ? [illegible] है। लोग कहते हैं कि एक दिन यह कंकड़-पत्थर [illegible] हो जायेंगे [illegible] भविष्य-[illegible] है"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] यह [illegible]

"तुम्हारी इसी फटी पुरानी गुदड़ी में कहीं छिपा होगा। उसके लिए तुम्हें पूरब-पच्छिम न भटकना पड़ेगा। अहा ! उस हीरे की चमक हजारों सूर्य और चन्द्र के प्रकाश से कहीं बढ़कर है। उसका जौहर हर एक नहीं जानता। लाख क्या करोड़ में कहीं उसका एक जौहरी मिलेगा।"

"इसी फटी-पुरानी गुदड़ी में ! तो फिर दिखाई क्यों नहीं देता ?"

"धूल-भरा है न ? फिर कैसे दिखाई देगा ?"

"दृष्टि निर्मल करो। दिव्य-दृष्टि से उसका दर्शन होगा। दिव्य-दृष्टि का अंजन तुम्हें इस वृक्ष के नीचे ही मिल जायगा। धीरज धरो, पथिक ! बहुत भटक चुके, अब चलने फिरने की जरूरत नहीं। तुम चाहोगे तो वह हीरा इसी जगह मिल जायगा।"

पथिक की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी और उसकी सफेद दाढ़ी पर से मोती जैसी बूँदें टपक पड़ीं।"

इस अभिव्यंजना में पूर्ण गम्भीरता एवं मार्दव है। भक्ति का अलङ्कारिक निदर्शन है और संकेत की प्रच्छन्नता शैली की खूबी को दुगुनी किये है।

पूर्ण साहित्यिक रचना का एक खण्ड और देखिये। इसमें आध्यात्मिकता की झाँकी यत्र-तत्र दिखाई दे जाती है परन्तु भावना का सूत्र साहित्य से ही प्रधान रूप से बँधा है। नीचे के खण्ड की रचना भी ध्यान देने योग्य है —

"भला देखिये तो बूढ़े ब्रह्मा ने कितनी भारी भूल की है? आँख का दर मिलाया है इन्द्रियों में। यदि बड़े-बड़े वेदान्ती इन्द्रियों की भर पेट निन्दा न कर डालते तो आँख का भी इन्द्रियों का सजातीय मानने में हमको आँख नीची न पड़ती। क्या नेत्रानन्द इन्द्रिय-परायणता की कोटि में आ सकता है? कदापि नहीं। इन्द्रियाँ भली हों या बुरी यह सब जानें वेदान्ती। हमें तो अपनी आँख इन्द्रियों से परे लगती है। रसना के रस में वह रस कहाँ जो 'अमी हलाहल

स्वाभाविक होती है। उसमे एक अद्भुत प्रवाह और रोचकता भी है। किन्तु यह सत्य है कि कही कही व्यञ्जना को सुन्दर बनाने की धुन मे आपने संस्कृत की तत्समपदावली बुरी तरह उँडेल दी है। किन्तु साथ ही भाषा में सरलता और चपलता लाने के लिए आपने उर्दू का भी निर्बाध प्रयोग किया है।

आपका वाक्य-विन्यास और आपकी शब्दावली सर्वत्र श्रुतिमधुर और आकर्षक है। यही आपकी शैली की विशेषता है। आपके श्रीकृष्ण के प्रति व्यङ्ग अनूठे हैं। जिन मर्मों के साथ आपकी शैली आगे बढ़ती है उनमे भावना का ज्वालामुखी तड़पता रहता है।

वियोगी हरि की मेधा-शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है। उन्हें अपनी शैली के विन्यास मे, संस्कृत, फारसी आदि के विद्वानों की मार्मिक उक्तियों का एक सुन्दर सोपान मिलता जाता है, जिसके सहारे आप अपनी भावुकता को लेकर रागात्मकता के चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाते हैं। वास्तव मे प्राचीन रस परिपूर्ण मार्मिक उक्तियो के विचारो को सहेतुक ढग से सजाने मे ही आपकी चपल शैली की विशेषता है।

स्वर्गीय बद्रीनाथ भट्ट वर्तमान युग के उन इने-गिने पिछड़े लेखको मे थे जिनकी लेखनी बहुत काल से विश्राम ले चुकी थी।

बद्रीनाथ भट्ट

स्वभाव के मधुर, मिलनसारी की मूर्ति बद्रीनाथ कभी खिन्न मुख नही देखे गये। उनका हमेशा खिला हुआ मुख बात बात मे व्यङ्ग करता था। बड़ी शीघ्रता से वे घुलमिल जाते थे। 'हास' उनके जीवन का स्थायी भाव था।

उनकी बनावट बडी भावुक थी। उनकी सजगता बडी सजीव थी। अंग्रेजी लेखक स्टिविन्सन की भाँति दीर्घव्यापी रुग्णता को झेलते हुए भी, बद्रीनाथ कभी म्लान नही हुए। वे प्रकाश मे आने से घबडाते थे। एकान्त जीवन, जिसमे मित्रो की मुस्कराहट और उनका अट्टहास मौजूद हो, उन्हे बडा पसन्द था। बहुत समय तक उन्होंने 'बालसखा' का सम्पादन किया। फुटकर लेखो के अतिरिक्त भट्टजी

ने कई नाटक और प्रहसन लिखे। 'कुरु-वन दहन' और 'चन्द्रगुप्त' में भूत और वर्तमान का मेल है। 'चुङ्गी की उम्मेदवारी' में म्युनिसिपेल्टियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का अच्छा उपहास है। 'लबड़ धौं-धौं' में आपके व्यंग्यात्मक लेखों का संग्रह है। मिस अमेरिकन में कुछ आस-पास के परिचितों का खाका है। 'राजपरिवर्तन' तथा 'तुलसीदास' में भी क्रमशः बद्रीनाथ के राजकीय और सामाजिक विचारों का निदर्शन है। 'हिन्दी' हिन्दी का छोटा इतिहास है।
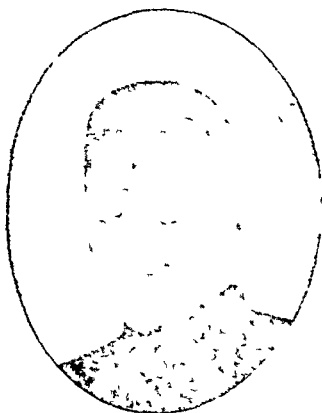
बद्रीनाथ भट्ट

वैसे तो थोड़े हेर-फेर के साथ बद्रीनाथ भट्ट में कई शैलियों के दर्शन होते हैं परन्तु उनकी विशेष शैलियाँ तीन हैं। गवेषणात्मक अथवा समीक्षात्मक विषयों पर लिखते समय वे महावीर प्रसाद द्विवेदी की गवेषणात्मक शैली का अनुसरण करते हैं। छोटे-बड़े वाक्य और हलके-हलके शब्द उनकी विशेषता है। एक उदाहरण उनकी हिन्दी से दिया जाता है —

"गद्य के पीछे पद्य का जन्म होना स्वाभाविक है किन्तु संसार के लगभग सभी साहित्यों में जो पहली कृति हमको मिलती है वह पद्य में है। कविता क्या लिखी जाती है यह प्रश्न ही दूसरा है। किसी कारण मनुष्य के हृदय में जब कुछ आनन्द उमड़ता या ठेस लगती है तब उसके हृदय की दशा कुछ विचित्र सी हो जाती है। इसी दशा को हम कविता की जननी कहते हैं। चारणों और भाटों के अलावा न जाने कितने लोगों ने हिन्दी में ईश्वर के गुण गाये होंगे,

उसको धन्यवाद दिये होंगे, उसके सामने अपना दुखड़ा रोया होगा, लोगों को नीति के मार्ग पर चलाने के लिए उपदेश दिये होंगे, अपनी-अपनी समझ के अनुसार संसार की असारता या सारता दिखायी होगी, सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया होगा परन्तु खोज करने पर भी उनकी रचनाओं का पता अभी तक नहीं चला। इसलिए जो कुछ हमारी आँखों के सामने है उसी को देख कर कहना पड़ता है कि जो रचना हमारे यहाँ सब से पुरानी मिलती है उसमें से अधिकतर भाटों और चारणों की है। शोक है तो यह कि उनकी रचना भी पूरी नहीं मिलती। समय के फेर से, राज्यों के ध्वंस होने से और इसी अनेक कारणों से जितनी सामग्री नष्ट हो गयी उसका सौवाँ हिस्सा भी आज हमको नहीं मिलता।"

वाक्य कहीं कहीं कुछ बड़े हो गये हैं परन्तु आशय एक ही है। उनकी दूसरी शैली भावात्मक होती है। इसके अन्तर्गत कभी बद्रीनाथ वर्णनात्मक प्रसङ्गों को अलङ्कारिक भाषा में लिखते चले जाते हैं और कभी अलङ्कारिक रूपकों को बाँधते हैं अथवा व्यङ्ग करते चले जाते हैं। पहले विधान का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"यक्ष—यहाँ आने वाला आत्मा अपनी प्रकृति के अनुसार संसार अथवा मोक्ष की ओर चला जाता है, अपने पहले के सञ्चित संस्कारों के अनुसार किसी को प्रकृति संसार का उपकार करने के निमित्त फिर मनुष्य-शरीर धारण करना होता है और किसी को परमात्मा में जा मिलना होता। अतएव प्राचीन काल के वीर यहाँ अब नहीं रहे। हाँ, हाल के कुछ वीरों के दर्शन अवश्य हो जायँगे। (दिव्य सङ्गीत की ध्वनि सुन पड़ती है) शायद आपके पधारने पर यहाँ उत्सव और हर्ष मनाया जा रहा है।"

इसी शैली में बड़े प्रवाह के साथ बद्रीनाथ भट्ट मन तत्व का विश्लेषण अथवा भावों का निदर्शन करने लगते हैं। भावों के नाना

उठाकर व्यक्ति-समाहार के सार्वभौमिक भूमि पर प्रेम को टिकाना इनकी शिक्षा का आदर्श है। इनके आदर्श-पात्र अधिकतर इसी भाव-प्रेरणा से राष्ट्र-सेवा अथवा देश-सेवा की ओर अग्रसर होते हैं। इनके आख्यान परिस्थिति-साध्य नही आदर्श-साध्य है। परन्तु इस कारण उनमे जो थोड़ी बहुत प्राचीनता आ गयी है उसका परिहार नाटकीयता और रसात्मकता कर देती है।

कहानियो और नाटको के लिखने मे आप पूर्ण साहित्यिक रूप मे समक्ष आते हैं। आपकी भाषा मे व्यंग्यात्मक वक्रता चाहे उतनी न हो परन्तु गहराई के साथ-साथ प्रवाह देखते ही बनता है। आपकी शैली के तीन रूप तो बिलकुल स्पष्ट हैं। कलाकार रामनरेश दूसरे प्रकार की भाषा लेकर चलते है और समीचक रामनरेश की भाषा का दूसरा रूप है। उनकी 'प्रेम की भूमिका' नामक कहानी का आरम्भिक अंश नीचे दिया जाता है—

"रतन अठारह की सीमा को पार कर चुकी थी। उसके उपवन मे बसन्त का आगमन हो चुका था। उसका मन एक नये रङ्ग-मञ्च पर आने के लिए वेश बदल रहा था।

इसके पहले वह किसी खिले हुए फूल को देखकर कहा करती थी—'अहा! कैसा सुन्दर फूल है'! अब वह कहने लगी थी—'अहा! इस फूल की सुन्दरता मे कैसी मादकता है'!

पहले वह भ्रमर के गुञ्जार को भौरो का एक मनोविनोद समझती थी। अब उसे भ्रमर-सङ्गीत की तरङ्गिणी मे कुछ देर तक तैरने मे आनन्द आने लगा था।

पहले वह तितलियो के पीछे दौड़ा करती थी। अब वह तितलियो को देखकर स्वप्न देखने लगी थी कि वह भी तितली बने और कोई उसके पीछे दौड़े।

पहले वह नदी की लहरो को देखकर कभी-कभी प्रसन्न हो जाया करती थी। अब वह नदी की लहरो को देखकर कहने लगी थी कि

पवन के कोमल स्पर्श से नदी को रोमाञ्च हो आता है।

इस तरह उसके स्वभाव में चुपचाप एक नया संसार बस गया था। उसके हृदय में रस की एक पतली-सी धारा यकायक फूट निकली थी जो प्रति दिन गहरी और चौड़ी होती जाती थी।"

यों विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का कितना कलात्मक वर्णन है। रामनरेश त्रिपाठी प्रकृति के अच्छे भक्त हैं। वे प्रकृति के नाना रूपों में अपनी रागात्मक वृत्ति श्रद्धा के साथ टिका देते हैं। उनका प्रकृति-पर्य्यवेक्षण विशद और व्यापक है। मनुष्य के जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावभङ्गी को स्पष्ट करने के लिए वे प्रकृति के रूपों को बड़ी सरलता से गूँथ देते हैं।

ऊपर के अवतरण में यह शक्ति कितनी स्पष्ट है।' वाक्य कितने छोटे छोटे हैं, परन्तु चित्र कैसा स्पष्ट है। उनमें आजकल के लेखकों का धुँधलापन नहीं है। उनके एक नाटक का एक अंश देखिये:—

"किरण—(आप ही आप) मेरे जीवन की धारा आज से बदल गयी। मैं कल तक कन्या थी, आज बहू हूँ। कल तक माता-पिता के स्नेह की धारा में तैरती फिरती थी, आज से मैं अपरिचितों का स्नेह खोजूँगी। (कुछ सोचकर) पिता जी ने धन और सम्मान देख कर मेरे लिए यह घर पसन्द किया है। इस घर के लोगों का बोल-चाल, रहन-सहन सब गवारों जैसा है। दिन भर गाँव की स्त्रियाँ मेरा मुँह देखने आती रहीं। सास जी हर वक्त ताकीद करती रहीं कि मैं घूँघट काढ़ रहूँ। मैं कहाँ से आ गयी! मैं कल के पहले कोयल की तरह बाग में इस डाली से उस डाली पर कुहकती फिरती थी, तितली की तरह उपवन में इस क्यारी से उस क्यारी में उड़ती फिरती थी। आज पिंजड़े में कैद हूँ। पिंजड़ा सोने ही का क्यों न हो, है तो पिंजड़ा ही।

भावनाओं का द्वन्द्व तो नहीं है परन्तु परिस्थितियों का सहसा प्रतिकूल परिचय, किंकर्तव्यविमूढ़ता के उद्गार स्पष्ट लक्ष्य हो रहा है।

स्थलों पर रामनरेश त्रिपाठी पर वर्तमान युग के सफल नाटककार जयशङ्कर प्रसाद की अभिव्यञ्जन का प्रभाव दिखाई देता है। ऐसे साक्षात् प्रणाली के उद्गार ऐसी ही वाग्-विदग्धता द्वारा प्रकट हो सकते हैं। इस अवतरण का अन्तिम वाक्य तो जयशङ्कर प्रसाद के 'आजतशत्रु नाटक' के उस स्थल का समकक्ष मालूम पड़ता है जिसमें श्यामा वेश्या, श्यामा पक्षी के साथ अपने को मिला कर साक्षात् प्रणाली के उद्गार प्रकट करती है।

रामनरेश त्रिपाठी की शैली का एक दूसरा स्वरूप देखिये:—

"नौकर—फुरसत कहाँ है ? दो पहर तक सो कर उठना, फिर नहा-धोकर खाना-पीना, फिर ताश-शतरञ्ज खेलना, फिर सोना, फिर शाम को हवा-खोरी के लिए जाना, फिर रात में खा-पीकर रण्डी और भडुओ के जमघट में बैठना, जुआ खेलना, शराब पीना-इनसे छुट्टी मिले तो घर में जाँय।"

इस लम्बे वाक्य में उर्दूदानी का प्रवाह है और रामनरेश की यह शैली प्रेमचन्द की शैली से बहुत मिलती जुलती है।

रामनरेश त्रिपाठी के 'प्रेम-लोक' नामक नाटक का सब से रसात्मक प्रसङ्ग नीचे दिया जाता है:—

"किरण—बाहर अन्धकार है ! घोर अन्धकार है !! मेरे जीवन में भी भीषण अन्धकार है ! मेरे आकाश में एक भी तारा नहीं जिनसे मैं राह पूछूँ। हाय ! मै कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?

(कुछ देर चुप रहती है)

वे (मदन मोहन) चले गये। अपमान की चोट न सह सके और घर छोडकर, गाँव छोडकर, अपने माता-पिता की कीर्ति छोड़ कर चले गये ! मै यहाँ किस के लिए रहूँ ?

आज महीने भर से अधिक हो गया उनकी कुछ भी खबर न मिली, वे कहाँ हैं ? खाते-पीते हैं कि भूखे रहते है ? कहाँ सोते हैं ? क्या पहनते है ? कोई नहीं जानता !

एक बार उन्हें देख पाती, माता जी की दी हुई चीजें उन्हें सौंप देती, और उनसे पूछ लेती कि मेरे लिए भी कहीं स्थान है?

कहाँ जाऊँ? (पिता के चित्र के सामने जाकर) पिता जी! तुम्हारे पास आऊँ? (सोचती है) नहीं तुम्हारे पास न आऊँगी।

तब क्या कलकत्ते चलूँ? कल गाँव में कोई कहता था कि उसने उनको कलकत्ते में देखा था। पता नहीं, कहाँ तक सच है!

इस सूने घर में मैं किसके लिए रहूँ? यह घर तो मुझे खाने दौड़ता है। चलो, किरण! चलो! नाव को नदी की धारा में छोड़ दो। पाल खोल दो! देखो, वह कहाँ जाकर किनारे लगती है।

[किरण बक्स से कुछ रुपये मैं निकाल कर आँचल के कोने में बाँधती है। चादर ओढ़ती है। चलने को तैयार होती है। फिर सोचती है!]

पर किसके भरोसे छोड़ जाऊँ? नौकरों के? नहीं मंगलदास को एक पत्र लिखकर रख जाती हूँ।"

इस प्रसङ्ग का भाव स्वाभाविक है। हृदय की सच्ची हलचल का वर्णन [illegible] हो रहा है। इस वर्णन में न कलात्मक अभि-व्यञ्जना है और न [illegible] की [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

के गुलाम कुतबुद्दीन के लश्कर में भी रहा होगा और उसमें सौदा बेचने और खरीदनेवालों के बीच की कोई बोली भी रही होगी और वह हिन्दी के सिवा दूसरी हो नहीं सकती। क्योंकि इस मुल्क के हिन्दू बनिये लश्कर में साथ रखे जाते थे। सिपाहियों को मजबूर होकर बनियों की बोली में सौदा माँगना पड़ता था। उसी में वे कुछ अपनी जबान के शब्द भी मिला देते थे। उस खिचड़ी हिन्दी का एक नया नाम देने की जरूरत यदि पड़ी भी हो तो वह 'लश्करी हिन्दी' कहला सकती है। आज कल सौ डेढ़-सौ वर्षों से इस मुल्क में अँग्रेजी राज है। हाईस्कूलों और कालेजों में जाइये तो वहाँ की हिन्दी में आप सैकड़ों अँग्रेजी 'वर्ड्स' काम करते हुए सुनायी पड़ेंगे, मगर उस हिन्दी का कोई अलग नाम नहीं। इसी तरह अरबी, फारसी, या तुर्की के कुछ लफ्जों के आ जाने से हिन्दी का दूसरा नाम क्यों होना चाहिए?" (हिन्दुस्तानी एकेडेमी)

इस गद्य-खण्ड की शैली से रामनरेश त्रिपाठी महावीरप्रसाद द्विवेदी के समकक्ष दिखायी देते हैं। यह इनकी शैली का तीसरा स्वरूप है

रामनरेश त्रिपाठी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी हिन्दी सेवा का लगन है [illegible]

[illegible]

[illegible] नहीं है

कृष्णकान्त मालवीय [illegible]

[illegible]

है इसमें प्रखरता नहीं है [illegible]

नहीं है इसमें उर्दू की [illegible] है कृष्णकान्त

के गुलाम कुतबुद्दीन के लश्कर में भी रहा होगा और उसमें सौदा बेचने और खरीदनेवालों के बीच की कोई बोली भी रही होगी और वह हिन्दी के सिवा दूसरी हो नहीं सकती। क्योंकि इस मुल्क के हिन्दू बनिये लश्कर में साथ रखे जाते थे। सिपाहियों को मजबूर होकर बनियों की बोली में सौदा माँगना पड़ता था। उसी में वे कुछ अपनी जबान के शब्द भी मिला देते थे। इस खिचड़ी हिन्दी का एक नया नाम देने की जरूरत यदि पड़ी भी हो तो वह 'लश्करी हिन्दी' कहला सकती है। आज कल सौ डेढ़-सौ वर्षों से इस मुल्क में अँग्रेजी राज है। हाईस्कूलों और कालेजों में जाइये तो वहाँ की हिन्दी में आप सैकड़ों अँग्रेजी 'वर्ड्स' काम करते हुए सुनायी पड़ेंगे. मगर इस हिन्दी का कोई अलग नाम नहीं। इसी तरह अरबी. फारसी. या तुर्की के कुछ लफ्जों के आ जाने से हिन्दी का दूसरा नाम क्यों होना चाहिए ?" (हिन्दुस्तानी एकेडमी)

इस गद्य-खण्ड की शैली में रामनरेश त्रिपाठी. महावीरप्रसाद द्विवेदी के समकक्ष दिखायी देते हैं। यह उनकी शैली का तीसरा स्वरूप है।

रामनरेश त्रिपाठी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी हिन्दी सेवा की लगन है। उनकी बहुज्ञता पग पग पर उनका सहारा देती है।

अभ्युदय के एक समय के सम्पादक कृष्णकान्त मालवीय भाषा की विशेष प्रकार की शैली रखते हैं। उनकी शैली में सरल शैली प्रतिभासम्पन्न लक्षण हैं परन्तु उसमें किसी प्रकार की ठसक या भड़भड़ाहट नहीं है

कृष्णकान्त मालवीय

वह एक ही प्रवाह की सीधी-सादी गति से स्वाभाविक रूप से बहती है उसमें प्रखरता नहीं है। चकाचौंध नहीं है प्रयोगों का ऊबड़-खाबड़पन नहीं है उसमें उर्दू की गतिसम्पन्न सजीवता है। कृष्णकान्त

कभी कभी अपने और अपनों के सुख ताक पर रख दिये जाते हैं। "ब्याही बेटी पड़ोसिन दाखिल" की कहावत झूठ नहीं है।"

इस अवतरण में उर्दू के शब्द भी हैं और कहावत भी। समीक्षा विश्लेषणात्मक है, दार्शनिक नहीं।

चरित्र-चित्रण करने के दो विधान देखने में आते हैं। कुछ लेखक तो पुराने ढङ्ग का वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण उपस्थित करते हैं और कुछ लोग नये ढङ्ग के निष्कर्षात्मक चित्रण का आश्रय लेते हैं। जैसा जो हो वैसा उसे वर्णन कर देना पहली कोटि का चित्रण है और जैसा जो हो वैसे उसके कारनामे अङ्कित कर देना दूसरे प्रकार का चरित्र-चित्रण है। कृष्णकान्त अधिकांश में पहले प्रकार का वर्णन उपस्थित करते हैं। एक उदाहरण देखिये:—

'प्रेम' जब तुम शुरू में मुझसे मिलते थे, तुम नीरस, कल्पना-विहीन और गद्यात्मक अधिक थे। तुममें कविता का नाम न था। तुम बहुत ही भौंडे और तनिक तनिक सी बातों में भूल करनेवाले मनुष्य थे और मुझको भय है कि धीरे धीरे तुमने अपनी पुरानी रविश न अख्त्यार कर ली हो। इसीलिए मैं फिर दोहराती हूँ कि तुम नीरस, कल्पनाविहीन और गद्यात्मक बहुत थे। तुम तारीफ करना, स्तुति-वाक्य कहना, बढ़ावा देना, चाटुकारिता, खुशामद करना, बातें बनाना जानते ही न थे या जानते थे तो बहुत मुश्किल से करते थे, किन्तु तुमको यह जान लेना चाहिए कि प्रशंसा, खुशामद और बढ़ावा प्रेम के लिए वैसा ही आवश्यक है जैसे कि जीवन के लिए [illegible] और [illegible] तुम सफल लेखक बनना चाहते हो तो यह याद कर लो कि प्रशंसा, बढ़ावा और खुशामद ही जीवन के सर्वस्व [illegible]

[illegible]) प्रशंसात्मक और प्रेरक हैं।

इस विषय में भी लेखक ने अपनी ही शैली का प्रयोग किया है। आलोच्य वाक्य में प्रशंसात्मक और प्रेरक को अधिक स्पष्ट करने के लिए समानार्थी शब्दों को भी लिख दिया गया है। वास्तव में कृष्णकान्त [illegible]

मालवीय अङ्गरेजी विद्वान होने के कारण अपनी विचारधारा को व्यक्त करने के पहले उसे अङ्गरेजी ही मे क्रमबद्ध करने के आदी है। इसीसे रूपान्तर करते समय हिन्दी की शब्द-शक्ति पर उनका भरोसा अक्षुण्ण नही रहता और वे अङ्गरेजी शब्दो को रखकर अपनी बातो को अङ्गरेजी व्यञ्जना-शक्ति के वेग मे स्फूर्ति देना चाहते हैं। यह विलक्षण चाल बहुत से अङ्गरेजी पढे-लिखे हिन्दी लेखको मे पायी जाती थी। अब इसका धीरे धीरे परित्याग हो रहा है।

नीचे के अवतरण मे कृष्णकान्त की सम्भाषण प्रणाली का आलेख्य उद्धृत किया जाता है :—

'मेरी प्रार्थना सुन और कम से कम अपने से अधिक सांसारिक बातो मे मुझको चतुर समझ, तुम बिना तनिक भी सोचे हुए, जैसे बैठे हो वैसे ही उठकर, उसके पास जाओ और उसे लिवा लाओ। विश्वास रक्खो अगर वह स्त्री है मानवी है, दानवी या राक्षसी नही, तो वहाँ वह कोई झगडा नही करेगी और हँसते हुए तुम्हारे साथ समान पूर्वक चली आवेगी। रात्रि अधिक हो गयी है, पडित जी बार बार करवट बदलते पूँछ रहे हैं, आज किसका जन्मपत्र तैयार हो रहा है अब मै सोने जाती हूँ, सुबह होते ही मेरा आदमी यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचा देगा। कल ही नहीं, परसो या नरसो दूसरा पत्र तुमको इसी सम्बन्ध मे फिर लिखूँगी तब तुमको बतलाऊँगी कि तुम्हारे मे क्या त्रुटियाँ है, जिनके कारण ऐसी घटनाओ का घटना सम्भव हुआ। बस अब नमस्कार निरुपमा को कल खुद जाकर पहले लिवा लाना। इसमे भूल न हो, नही तो फिर तुमको कभी कुछ नही लिखूँगी।''

इस शैली मे 'रत' करने की क्षमता का थोडा बहुत अभाव है। यदि थोडी भावुकता और आ जाती और उसकी सुखद आवृत्ति होती तो प्रभाव अधिक बढ जाता।

अगले पृष्ट पर कृष्णकान्त मालवीय की प्रसिद्ध पुस्तक 'सिहगढ

विजय' का एक अवतरण दिया जाता है। इसमें मनोभावों का आत्म-निदर्शनात्मक विश्लेषण है।

कमलकुमारी को देखकर उदयभानु के पाषाण-हृदय को भी अत्यन्त खेद हुआ। "क्या मेरे भय से ही तो इसकी यह दशा नहीं हुई ?" इस बात का विचार चुपचाप खड़ा खड़ा वह कुछ देर तक करता रहा। कमलकुमारी की दशा इतनी अधिक शोचनीय हो गयी थी कि उसके शरीर में अस्थि-पञ्जर मात्र रह गया था। उसका सौन्दर्य इतना फीका पड़ गया था कि उसके समान निस्तेज और शायद ही कोई इस संसार में हो। ऐसी दशा देखकर उसने सोचा कि यदि मैं इसके साथ कठोरता का व्यवहार करना छोड़ दूँ तो सम्भव है इसके शरीर में फिर बल आ जाय और यह जीवित बनी रहे, नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि यह रास्ते में ही मर जाय।

उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि यदि कुछ दिनों तक इसकी यही दशा रही तो यह अवश्य मृत्यु के गाल में चली जायगी। अतएव उसने देवलदेवी से स्पष्ट कहा कि 'मैं आज से तुम लोगों के साथ किसी प्रकार की बातचीत अथवा छेड़छाड़ न करूँगा। इतना ही नहीं वरन् माघ कृष्ण नवमी के दिन केवल कमलकुमारी से एक बार निवेदन करूँगा कि तुम मेरे साथ विवाह करने को राज़ी हो अथवा नहीं? यदि उसने कहा कि नहीं तो फिर मैं बिना यह पूछे हुए कि क्यों नहीं तुम दोनों को तुरन्त राजपूताना वापिस भेज दूँगा। परन्तु तब तक इसकी अच्छी तरह खबरदारी रखो। [illegible] मरना अच्छा नहीं। मैं अब इसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा। मैंने इसके [illegible] होता परन्तु [illegible] नहीं छूटता।' यह कहकर उदयभानु वहाँ से चला गया।

प्रस्तुत उद्धरण से पता चलता है कि इस समय तक आत्म-दर्शनात्मक मनोभाव के चित्र में अल्पता है। इस परिस्थिति में उर्दू शब्दों का कम प्रयोग है। शैली में स्वाभाविक वर्णनात्मक विधि

का ही ढर्रा दिखायी देता है। आगे के अवतरण को देखिये:—

"बच्चों के सम्बन्ध में एक बात और कह देना चाहता हूँ और वह यह है कि यह समझना कि बच्चा बहुत छोटा है, कुछ समझ नहीं सकता, बिलकुल ग़लत है। कोई भी बच्चा, कितना ही बच्चा क्यों न हो, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ आदर्श को समझ लेने के लिए छोटा नहीं हुआ करता। बड़ा से बड़ा आदर्श बच्चे के सामने रखा जा सकता है और उसके अनुसरण के लिए वह प्रोत्साहित किया जा सकता है, केवल अगर आदर्श उस रूप में उसके सामने उपस्थित किया जाय जिसे वह समझ सकता है। यह नियम कपड़े से लेकर जीवन के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ नियम के सम्बन्ध में एक समान ही लागू है।

"एक बच्चे को खेलने को साफ सुथरा अच्छा कपड़ा पहना हुआ गुड्डा दिया जाय और उसे यह बराबर समझाया जाना रहे कि उसके कपड़े को वह गन्दा न करे और गन्दा होते ही उसका कपड़ा बदल दिया जाया करे तो कुछ ही समय में बच्चा उसी तरह से साफ सुथरे कपड़े पहनने की इच्छा करने लगेगा और धीरे-धीरे गन्दे कपड़ों और गन्दगी से उसे घृणा हो जायगी।" माता पिता को यह भी सदा ध्यान में रखना चाहिए कि वे कम से कम उसके सामने सदा उसी तरह से उठें बैठें और आचरण करें जिस तरह कि बच्चे को आचरण करते वह सदा देखना चाहते हैं। इन बातों (Example is better than precept) शिक्षा की अपेक्षा उसी के अनुसार आचरण करना अधिक फलप्रद होता है और मैं आशा करता हूँ कि तुम लोग इस ओर सदा ध्यान रखोगे।"

यह शैली पूर्ण रूप से प्रचारात्मक है। महावीरप्रसाद द्विवेदी की शैली का पूर्ण स्वरूप है। छोटे बड़े वाक्य सुलझी हुई बातें, हिन्दी, उर्दू, अँग्रेज़ी के प्रचलित शब्द यह इसकी विशेषता है। कृष्णकान्त मालवीय हिन्दी के एक कीर्ति-सम्पन्न लेखक हैं।

चतुरसेन शास्त्री उर्दू के भी अच्छे विद्वान है और हिन्दी के भी। उनकी ऐसी पकी हुई शैली बहुत कम लेखको की है। उसके कई स्वरूप दिखायी देते हैं। उनके इतिवृत्तात्मक

चतुरसेन शास्त्री

वर्णन का एक प्रभावपूर्ण स्थल देखिये :—

"यह युवक और युवती से, सागरा पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् .मगध-पति प्रियदर्शी अशोक के पुत्र. महाभट्टारक पादीय, महाकुमार महेन्द्र और महाराज-कुमारी संघमित्र थे और उनके साथी बौद्ध-भिक्षु। ये दोनो धर्मात्मा. त्यागी, राजसन्तति, आचार्य उपगुप्त की इच्छा से, सुदूर सागरवर्ती सिंहलद्वीप में, भिक्षुवृत्ति ग्रहण कर. बौद्ध-धर्म का प्रचार करने जा रहे थे। महाराज-कुमारी के दक्षिण हाथ मे बोधि-वृक्ष की टहनी थी।"

लम्बे लम्बे वाक्यो मे सुखद औत्सुक्य फैला धीमी चाल से चलता है। इस शैली मे न श्यामसुन्दरदास का बोझीलापन है और न जी पी श्रीवास्तव का छिछलापन। उपयुक्त शब्दों का अबाध गति से निकलना. उनकी शैली की एक विशेषता है। उसमे लम्बाई है परन्तु उलझाव की लपेट नहीं है।

वस्तु-वर्णन मे शास्त्री जी की दृष्टि कितनी पैनी है और व्यापक है। दूसरा उदाहरण देखिये —

मोती महल के एक कमरे मे शमादान जल रहा था और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फीरोजी रङ्ग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियो से गुथी हुई उस फीरोजी रङ्ग की ओढ़नी पर कसी हुई कमख्वाब की कुर्ती और पन्नो की कमर पेटी पर. अँगूर के बराबर बड़े मोतियो की माला झूम रही थी। सलीमा का रङ्ग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। सङ्गमर्मर के समान पैरो

है। विवेचन सीधा और सुलझा हुआ है। वाक्यों के प्रवाह में गम्भीरता की ठसक है।

यह सब होने पर भी चतुरसेन शास्त्री का एक दूसरा रूप भी है। कभी कभी वे ओछे और अभद्र विषयो पर भी लेखनी घिसने लगते हैं। उस समय उनकी शैली मे भी जी. पी. श्रीवास्तव का छिछला बाजारूपन दिखायी देने लगता है। परन्तु यह तभी होता है जब वे प्रतिपाद्य वस्तु के कारण बहुत नीचे उतर आते हैं और यथार्थवाद का भूत उनके सिर पर सवार हो जाता है। रूपान्तर करने मे अथवा किसी चीज को अपना लेने मे भी चतुरसेन बड़े पटु हैं।

जी पी श्रीवास्तव

जी. पी. श्रीवास्तव की कोई निजी शैली नहीं है। इनकी चरचा केवल इसलिए की गयी है कि लोग हास्यरस का वास्तविक स्वरूप समझ ले। इन्हे हास्यरस का 'आचार्य' कहना हास्यरस के सम्बन्ध में नासमझी का परिचय देना है। जितने रस हैं सब मे 'हास्यरस' की निष्पत्ति कलाकार के लिए सब से अधिक कठिन है। ऐसे महापुरुषों की सख्या इस ससार मे बहुत कम है जिनका स्थायी स्वरूप हास्यरस हो सका है। इस का विश्लेषण रसको उत्पन्न नही करता। रस की उपस्थिति की घोषणा रस को भगा देती है। रस स्वत अभिव्यञ्जना के स्पर्श से रसिक मन मे उत्पन्न होता है। साहित्य के अन्तर्गत स्वीकृत रस की उत्पत्ति का अर्थ केवल भाषा से जगायी हुई रस की उद्दीप्ति से है। वाह्य स्वरूपो के पर्यवेक्षण से उत्पन्न, रससे नही है। अभिप्राय यह है कि मन भाषा की अभिव्यञ्जना से जो रसात्मकता अनुभव करता साहित्य सम्बन्धी रस का इसी से अभिप्राय है क्योंकि इसी की उपस्थिति साहित्य मे रक्षित रखी जा सकती है।

हास्यरस का स्वरूप इतना सुग्रह्य नहीं। किसी का बेढङ्गा स्वरूप चित्रित करने मे आयें बायें शाँय बक जाना हास्य रस नहीं है। शिष्टों का मनोरञ्जन ही उच्चकोटि के हास्यरस का ध्येय होना चाहिए।

छोकडो को हँसाने के लिए, बिगडे नवयुवको को प्रसन्न करने के लिए, निम्न वासना को तिलमिला देने के लिए, जो हास्य उत्पन्न किया जाता है वह निम्न कोटि का कहलाता है। श्रीवास्तव जी ने 'लम्बी डाढी' मे एक मास्टर का खाका खीचा है। उसे देखिये —

"मास्टर साहब ने इन्स्पेक्टर साहब से मिलने की तैयारी मे बहुत से शेक्सपियर के कोटेशन रट लिये। जिसमे बातो मे झट ल्याकत टपका दे। वह भी जाने हॉ कोई ऑगरेजी जानता है। मोछो पर खिजाब लगा, बडे से धराऊ अचकन निकाली, जो मारे शिकन के अब कमर तक रह गयी थी। गले मे रूमाल बॉधा, तोद पर इत्र लगाया। ऑखो मे सुरमा किया। मुह मे गिलौरियॉ ठूॅसी। हाते के बाहर शागिर्द पेशे के पास तीन घण्टे तक खानसामा की खुशामद करते रहे। कमर से एक रुपया भी निकाल कर नजर किया। मगर वह बार बार यही कहता जाता था कि साहब आज 'नॉट ऐट होम (Not at home) हैं। "नही मिल सकते"। बेचारे बहुत गिड़गिड़ाये हाथ जोड़ कर कहा कि "खॉ साहब! मै तो आपका ताबेदार हूॅ। महरबानी कीजिये। सच कहता हूॅ एक ही रुपया भेट पास था, और होता तो मै जरूर देता। किसी तरकीब से साहब से मिला दीजिये। अब तो हम आपकी डेवढी पर खडे है।"

इस अवतरण मे अंग्रेजी और उर्दू शब्दो का ज्यो का त्यो प्रयोग, जहाँ एक ओर प्रवाह और सर्व-सुबोधता उत्पन्न करके शैली को साधारण बोल-चाल की भाषा के निकट ले जाता है, वहॉ छिछलेपन और बाजारूपन आजाने के कारण एक ओछी अभद्रता भी उत्पन्न कर देता है। यह चित्रण वस्तु-स्थिति पर अङ्कित न होने के कारण, हास्यरस उत्पन्न करने के स्थान पर, लेखक के बालिश्य पर हँसी अवश्य उत्पन्न कर देता है।

हास्य की प्रत्येक अच्छी उक्ति के भीतर एक व्यंग झॉका करता है। ऊपर के अवतरण मे कदाचित् 'मास्टर' वर्ग के स्वरूप

का निरूपण वांछित था, परन्तु वर्णन की ठोस व्यंजना ने व्यंग की सङ्केतात्मकता को नष्ट कर दिया है। श्रीवास्तव के 'भडामसिंह शर्मा' से एक स्थल नीचे दिया जाता है। इसमें कदाचित् उनकी सारी कृतियों में सबसे अधिक व्यंग स्पष्ट लक्षित होता है।

"अब रही लेखकों की फिक्र। वह बेकार और फिजूल है। जहाँ चाहिए, टके पसेरी लेखक और घाते में बीस कोड़ी कवि ले लीजिये। जिस तिस का चाहिए। ताजे और बचकानों के आगे पुराने और सैकण्ड-हैण्डों की मिट्टी पलीद है। और आपकी दुआ से सभी फर्स्ट क्लास! क्योंकि आजकल तो काबिलियत और लियाकत सिर्फ मुशकिल लफ्जों के इस्तेमाल में घुसी है, और खड़ी बोली की बेतुकी कविताओं में! और अगर कहीं उसमें शिक्षा की दुम लगी हुई है तो हमारे सम्पादक पकौड़ीलाल अपनी खोपड़ी पर प्रकाशित करेंगे, क्योंकि हिन्दी में बिना इस दुम के कोई लेख ही नहीं गिना जाता. लाख भावनाओं से शराबोर लेख लिखिये कागज पर कलेजा तक निकाल के रख दीजिये। भाषा की रवानी से पानी के बहाव को मात कर दीजिये। चरित्रों के खींचने में वह सफाई दिखलाइये कि सिर्फ बोली ही सुनकर दिन में उल्लू भी पहचान ले कि यह तो नखरों से कूट कूट कर भरी हुई प्रेम से पगी हुई पति की बावली नयी नवेली अलबेली है। मगर जो कहीं हमारे सम्पादक जी को टटोलने से भी इसमें वह दुम न मिली उस लेख बैरङ्ग वापस। [illegible] की हिन्दी में यह कदर है।

बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

छिपा दूँगा। दरवाजे पर Art का पहरा बैठा दूँगा। बस, हो चुके बेशर्म, हो चुका! दरवाजो पर बहुत शोखी के साथ टहल चुकी। पाठको से खुल्लम खुल्ला बाते कर चुकी। चल अन्दर चल, मैं किसी मुर्दे-दिल सम्पादक को खुश करने के लिए तेरी खुशामद न करूँगा। तुझे लाख बार गरज होगी तो तू खुद पैरो गिरेगी और लेखो के पर्दे मे रहेगी। वहाँ तेरी हवाखोरी के लिए खिड़कियाँ काफी हैं। .. .. लीजिये, दुम गायब हो गयी। झगडा खतम हुआ। सम्पादक जी का पकडने का हथियार छिन हो गया आखिर! हिप! हिप!! हुर्रे!!!!"

इस शैली की खानी मे छिछलेपन के कारण, बालको का मखौल कही-कही पर दिखायी देता है। 'घाते मे बीस कोडी कवि' 'वचकाने' 'सेकेंडहैण्ड' इत्यादि शब्द जिस सन्दर्भ मे प्रयुक्त हैं, हास्य रस उत्पन्न नही करते केवल शैली का बाजारूपन प्रकट करते हैं। जिस व्यङ्ग का स्वरूप स्थिर करने के लिए यह स्थल लेखक ने लिखा है वह शैली की उछल-कूद, मे शब्दो की भडभडाहट मे, लापता हो जाता है। नीचे लम्बी दाढ़ी का एक स्थल देखिये—

"अहाहा! छम छम छम! एलफ्रेड कम्पनी का पर्दा उठा। एग्जिबिशन का टावर जगमगा उठा। बिजलियो के एकबारगी फव्वारे छूटे। आँखो मे चकाचौंध छा गयी। हृदयो पर वज्र गिरा। कोई इधर छम से निकली। कोई उधर चमक के हो रही। कोई इस तरफ अठखेलियाँ करती हुई चली। कोई उस तरफ बल खाती हुई बढ़ी। कोई नखरे मे झिझक गयी। कोई मुस्कुरा के पलट गयी। हाय! हाय! इन दो आँखो ने चोट क्या ढाये। एक दिल किसके हवाले करे। नजर ठहरे तब तो कमबख्त निकलता फिरती है। अरे दिल! अरे दिल! जरा सँभल! हाय नहीं चूर हो। वह तक भागा। उसकी नाच ने उसमे छीना। उसकी शोखी उससे भी न रहा। दिल क्या फुटबाल हो गया! मगर पञ्चर न निकला! इसकी चाल अच्छी है। इसके लटकन हाय वाले बेसुध किये देते है। यह रसीली है तो वह कटीली है। यह बात बात मे

मुस्कराती है तो वह बात बात में लजाती है। एक क्लोरोफार्म की शीशी है, तो वह दूसरी ब्रांडी का घूँट। उफ़! यह झाड़-फानूस की रोशनी तो और भी ग़ज़ब ढा रही है। यह सीन और नयी जवानी के दिन। खैरसल्लाह सब ईश्वर के हाथ में है।"

क्या इसी का नाम हास्य-रस है? यह तो निरे शोहदापन और लुच्चापन के भाव अङ्कित हैं। अपनी कामुक भावनाओं का नङ्गा चित्र खींच देना वास्तविकता के नाम पर कला के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। यदि यही साहित्य होता तो पुस्तकें लिखने की आवश्यकता न होती। मृतक के कुटुम्बियों के रोने में, 'करुणरस' कूड़ेखाने में; 'वीभत्सरस' चलती हुई तलवारों में; 'वीररस' गुड्डेबाज़ी बनाकर लड़नेवाले बालकों में 'रौद्ररस' तथा पतिपत्नी की फुसफुसाहट में 'शृङ्गार रस' बहुत मिल सकता था। परन्तु इन परिस्थितियों को साहित्य में कुछ हेर-फेर के साथ स्वीकार किया जाता है। वही हेर-फेर करनेवाली वस्तु कला है। वस्तु का शैली पर पड़ा प्रभाव पड़ता है। गुण्डपने के भावों ने शैली की तेज़ी में नशीलापन भर दिया है। उनमें मस्ती नहीं है। उनमें इठलाने की प्रवृत्ति है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण देखिये —

लखनऊ में रह कर जिसने अपनी जवानी में हुसैनाबाद के दोनों इस मनोहर की मुहर्रम की आठवीं तारीख को न देखा उसने फिर हुसैनाबाद का क्या देखा? वह फैशनेबिल जनाकड़ा होता है। क्योंकि न तो उस रात [illegible] और न कोई [illegible] आते पाते हैं और वह [illegible] है कि [illegible] की [illegible] पर [illegible] [illegible] है [illegible] में [illegible] दिन [illegible] रहते हैं [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] तारीख को मिलता है [illegible] तारीख [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] क्रिसमस के दिनों में इलाहाबाद के [illegible] का [illegible]

है । एक से एक फैशनेबिल जेन्टिलमैन और लेडियाँ शोख़ और कमसिन मिसें, कालिज की लड़कियाँ, मर्जाली-भड़कीली पारसिनें, मोटरकार, लेन्टो और लेडीज बग्गियों पर सनसनाती हुई आती हैं ।''

इस स्थल में भी छिछोरपने की दुर्गन्ध आती है । लेखक की लेखनी की नोक पर जो शब्द, जो वाक्य, जो भाव, जो विचार आते हैं वह उन्हें उँडेलता चला जाता है । प्रभ विरगुता की ओर उसका ध्यान नहीं है । उनकी अभिव्यक्ति में छिछलापन है । वह न तो अपने विषय में ही प्रवेश करने की शक्ति रखती है और न पढ़नेवाले के हृदय पर ही गम्भीर आघात करती है ।

बेचनशर्मा 'उग्र' की शैली भी श्रीवास्तव की शैली से मिलती-जुलती है और वस्तुनिर्देश में भी कुछ साम्य है । परन्तु जितनी पैठ उग्र की है उतनी श्रीवास्तव की नहीं । अधिकतर अश्लील होने के कारण श्रीवास्तव की पुस्तकें आदर नहीं पा सकतीं ।

अश्लीलता के सम्बन्ध में सभापति की स्थिति से स्वयं श्रीवास्तव क्या कहते हैं —

' अश्लीलता कहाँ होती है वह भी मुँहफट होने के कारण । मैं साफ बताये देता हूँ—पलङ्ग, टट्टीघर या गुसलखाने में । बस इन स्थानों को छोड़कर लेखनी को हर जगह जाने का पूर्ण अधिकार है । अश्लीलता या वासना के नाम पर इसकी रोक-टोक करना साहित्य में ज्ञान और तत्व का द्वार बन्द करना है मनोविज्ञान का गला घोंटना है प्रकृति और स्वाभाविकता का कलेजा मसलना है कला के पैरों में बेड़ियाँ डालना है, जाति को मुर्दा बनाना है और सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी पूज्य देवियों के चरित्र-दल में कलङ्क लगाना है । आप लोग भी कहते होंगे कि किस बक्की से पाला पड़ गया । कविता में अपनी अयोग्यता दिखाने की आड़ में यह हास्य-रस' की सारी कहानी सुना गया ।''

इससे यह स्पष्ट है कि अश्लीलता का वास्तविक स्वरूप लेखक नहीं समझता । वह उस पतली मेड़ को पहचानने में सर्वथा अनुपयुक्त है,

बालकृष्ण शर्मा उन साहित्य-कुबेरों में हैं जो अपना सरस्वती-कोष बिखेर देना जानते हैं, उनका उपयोग करना नहीं जानते। यही कारण है कि समीक्षकों की दृष्टि अभी बालकृष्ण शर्मा के ऊपर एक उत्तम गद्य-लेखक के रूप में नहीं पड़ी। उन्हें केवल कवि के ही रूप में जानते हैं और उस रूप में भी उनका उचित परिचय अभी समीक्षकों को स्पष्ट नहीं हुआ है। इसका कारण केवल यह है कि बालकृष्ण शर्मा ने कभी अपनी पद्य या गद्य की कृतियों के सङ्कलन छपाने की ओर ध्यान नहीं दिया। यदि उनकी कहानियों का संग्रह निकल गया होता, यदि उनके जोशीले लेखों का सामूहिक रूप आलोचकों के समक्ष आ गया होता, यदि उनके मर्मभेदी कोमल भावनाओं से ओत-प्रोत गद्यखण्डों का सङ्कलन हिन्दी संसार के सामने होता तो बालकृष्ण की उपेक्षा करना हिन्दी के इतिहासकार के लिए असम्भव था।

बालकृष्ण शर्मा

शैली ही व्यक्ति का प्रतिरूप है। यह जितना बालकृष्ण के लिए सत्य है उतना कदाचित् ही किसी अन्य लेखक के लिये सत्य होगा। कहीं भी किसी परिस्थिति में उनका वाक्य-समूहों का एक खण्ड बड़े स्पष्ट शब्दों में उनका विज्ञापन करता है। उनकी सारी कृतियों में जो एक लगन है, एक धुन है, एक प्रेरणा है, एक स्थायीभाव है, वही उनकी शैली में सबलता का विधायक है। यह प्रायः सभी लेखकों में देखा गया है कि जब वे कोई तात्त्विक-तार्किक विवेचन करते हैं तो छोटे-छोटे वाक्यों में प्रश्नात्मक प्रणाली में एक के बाद एक चिन्तन का निष्कर्ष सामने रखते चले जाते हैं व हृदय से बिलकुल हट कर बुद्धि के क्षेत्र में ही विचरण करते हैं। उनमें तर्क का स्थापन आ जाता है। यह बात बालकृष्ण में नहीं है। उनके वाक्य चाहे छोटे हों या बड़े वे रागात्मकता का दामन नहीं छोड़ते। उनकी विवेचन-प्रणाली में भी ध्वनि रहती है। उनमें हृदय और मस्तिष्क का योग मिला रहता है

बालकृष्ण शर्मा ने बड़ा सजग [illegible] तथा [illegible]

बालकृष्ण शर्मा उन साहित्य-कुबेरों में हैं जो अपना सरस्वती-कोष बिखेर देना जानते हैं, उसका उपयोग करना नहीं जानते। यही कारण है कि समीक्षकों की दृष्टि अभी बालकृष्ण शर्मा के ऊपर एक उत्तम गद्य-लेखक के रूप में नहीं पड़ी। उन्हें केवल कवि के ही रूप में जानते हैं और उस रूप में भी उनका उचित परिचय अभी समीक्षकों को प्राप्त नहीं हुआ है। इसका कारण केवल यह है कि बालकृष्ण शर्मा ने कभी अपनी पद्य या गद्य की कृतियों के सङ्कलन छपाने की ओर ध्यान नहीं दिया। यदि उनकी कहानियों का संग्रह निकल गया होता, यदि उनके जोशीले लेखों का सामूहिक रूप आलोचकों के समक्ष आ गया होता, यदि उनके मर्मभेदी कोमल भावनाओं से ओत-प्रोत गद्यखण्डों का सङ्कलन हिन्दी संसार के सामने होता तो बालकृष्ण की उपेक्षा करना हिन्दी के इतिहासकार के लिए असम्भव था।

बालकृष्ण शर्मा

शैली ही व्यक्ति का प्रतिरूप है। यह जितना बालकृष्ण के लिए सत्य है उतना कदाचित् ही किसी अन्य लेखक के लिये सत्य होगा। कहीं भी किसी परिस्थिति में उनका वाक्य-समूह एक स्वर से बड़े स्पष्ट शब्दों में उनका विज्ञापन करता है। उनकी सारी कृतियों में जो एक लगन है, एक धुन है, एक प्रेरणा है, एक स्थायीभाव है, वही उनकी शैली में सबलता का विधायक है। यह प्रायः सभी लेखकों में देखा गया है कि जब वे कोई तात्त्विक-तार्किक विवेचन करते हैं तो छोटे-छोटे वाक्यों में प्रश्नात्मक प्रणाली में एक के बाद एक चिन्तना का निष्कर्ष सामने रखते चले जाते हैं, वे हृदय से बिल्कुल हट कर बुद्धि के क्षेत्र में ही विचरण करते हैं। उसमें तर्क का रूखापन आ जाता है। यह बात बालकृष्ण में नहीं है। उनके वाक्य चाहे छोटे हों या बड़े वे रागात्मिकता का दामन नहीं छोड़ते। उनकी विवेचन-प्रणाली में पूरी स्फूर्ति होती है। उनमें हृदय और मस्तिष्क का पूरा साहाय्य रहता है।

बालकृष्ण शर्मा ने बड़ा सजग चिन्तनशील तथा [illegible]

अपने देवता को रिझाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। हम निःसाधन हैं, निर्धन हैं, निस्तेज हैं। तुम्हारे तपःपूत हाथों में हम क्या भेंट धरें? हम तो इस योग्य भी नहीं हैं कि तुम्हारी चरण-रज को अपने कलुषित माथे पर रख सकें। यह आत्म-ग्लानि की अनुचित भावना नहीं है, जो हमें ऐसा कहने को विवश कर रही है।"

हिन्दी प्रान्त के दौरे में महात्मा जी कानपुर पधारनेवाले थे। उसी स्वागत में यह लेख लिखा गया है। भाषा में कैसी भावमयी है और प्रत्येक वाक्य मानो श्रद्धा के फूल बिखेरता चलता है।

गुणों के दर्शन पर बालकृष्ण शर्मा उन्मत्त हो जाते हैं। वे स्वयं वेग-सम्पन्न हैं, अतएव सर्वत्र ही वे वेग, साहस और निर्भीकता के पुजारी हैं। उन्हें टिमटिमाते हुए तारे की अपेक्षा, आकाश को एक क्षण के लिए आलोकित करके प्रकाश-शक्ति विकीर्ण करता हुआ विलयमान उल्का अधिक पसन्द है। प्रत्येक शौर्य-सम्पन्न व्यक्ति के चरणों में बालकृष्ण नतमस्तक, श्रद्धा की पुष्पाञ्जलि बिखेरने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। उनके 'वे' शीर्षक लेख का एक खण्ड 'प्रताप' से लिया जाता है।

'अनुत्तरदायी? जल्दबाज़? अधीर आदर्शवादी? लुटेरे! डाकू! हत्यारे' अरे ओ दुनियादार! तू उन्हें किस नाम से, किस गाली से, विभूषित करना चाहता है? वे मस्त हैं। वे दीवाने हैं। वे इस दुनिया के नहीं हैं। वे स्वप्नलोक की वीथियों में विचरण करते हैं। उनकी दुनिया में, शासन की कटुता ने माँ धरित्री का दूध अपेय नहीं बनाया। उनके कल्पना-लोक में ऊँच-नीच का, धनी-निर्धन का, हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं है। इसी सम-भावना का प्रचार करने के लिए वे जीते हैं। इसी दुनिया में उसी आदर्श को स्थापित करने के लिए वे मरते हैं। दुनिया की पतित मुण्ड-मण्डली उनको गालियाँ देती है। लेकिन यदि सत्य के उपासक गालियों की परवाह करते तो शायद दुनिया में आज सत्य, न्याय, स्वातन्त्र्य और आदर्श के उपासकों के वंश में कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रह जाता। लोक-रुचि अथवा

पर गांधीविद्वेष का भूत सवार है। भूत के उतारने की दवा है मिरचे की धूनी और करारा तमाचा। सो भाई, आज मैं वही प्रयोग कर रहा हूँ। भूत-व्याधि-ग्रस्त यह पत्र दल का लौंडा है। इसलिए जरा मैं सावधानता कर ही तमाचे जड़ूँगा,—मुझे यह भी तो ख्याल है न, कि कहीं लड़के के गाल बहुत अधिक सुर्ख न हो जावें।"

यह अवतरण जिस लेख से लिया गया है उसका नाम है 'मिरचे की धूनी और तमाचा' और इसके लेखक का नाम 'श्रीमान तड़ातड़ शर्मा' है। बालकृष्ण ने उचित शब्द चयन करने की अनुपम शक्ति है।

इस अवतरण के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि बालकृष्ण का उस शक्ति के साथ कोई विरोध नहीं, जिसपर उन्होंने उक्त लेख में आक्रमण किया है। महात्मा गांधी की निन्दा के कारण बालकृष्ण ने उसकी खबर ली है। यह द्वेष उनका स्वार्थगत न होकर निस्वार्थ है।

इस शैली में व्यंग्यात्मकता का आश्रय नहीं लिया गया, अन्यथा प्रयोगों की अभद्रता बचायी जा सकती थी। भावना के वेग में भाषा की घड़घड़ाहट दूर से सुन पड़ती है। उसकी कर्कशता रौद्र रूप धारण किये है। उर्दू, हिन्दी और संस्कृत के जैसे शब्द आये हैं प्रयोग किये गये हैं। इस अवतरण अथवा ऊपर के अन्य अवतरणों में यह न समझना चाहिए कि बालकृष्ण [illegible]

अपवाद ही समझना चाहिए।

नीचे उनकी एक कहानी का आरम्भिक अंश दिया जाता है :—

'मेरे दो नटखट बच्चे हैं। ऐसे नटखट जैसे बन्दर। वे बड़े भोले हैं। ऐसे भोले जैसे जवानी की उमङ्ग। मेरे बच्चे बड़े कठोर हैं। ऐसे कठोर जैसे सालिगराम की बटिया। मेरे बच्चे बड़े स्नेहार्द्र हैं। ऐसे स्नेहार्द्र जैसे स्तन पीनेवाले बच्चे के दूध भरे मुंह की सोंधी सोंधी सुगन्ध। मेरे बच्चे बड़े तगड़े हैं। ऐसे तगड़े जैसे पार्थ-सारथी के आजानु बाहु। मेरे बच्चों की आँखों में सपना रहता है—इस तरह जैसे छोटे छोटे घोंसलों में चिड़ियाँ रहती हैं।

मेरा एक बालक बड़ा लम्बा है। ऐसा लम्बा जैसे चीड़ का वृक्ष। मेरा दूसरा बालक जरा ठिंगना है। ऐसा ठिंगना जैसे बरगद का गुट्ठल झाड़। मेरे बच्चों के दिल हैं। उनका कलेजा सवा हाथ का है। होसले बढ़े हुए हैं। वे भोले भण्डारी यह नहीं जानते कि आजकल यहाँ दिल का होसला अभिशाप बन आता है। उन्हें क्या? जब जवानी का जोश बल्लियों उछलता है तब वे दोनों बच्चे मुझे घेर कर खड़े हो जाते हैं और लगते हैं धींगा-मुश्ती करने। अपनी उमङ्ग में वे कभी गाते हैं कभी रोते हैं कभी हँसते हैं और कभी चुपचुप हो जाते हैं।"

कैसी अलङ्कारिक भाषा है। कैसा प्रवाह है। कैसे छोटे छोटे किन्तु चोट पहुँचानेवाले वाक्य हैं। अलङ्कारों की योजना में नयी उद्भावनाएँ की गयी हैं। कहानी पर युगधर्म का प्रभाव है। यह कवि की लेखनी-प्रसूत है यह स्पष्ट मालूम होता है। छिपा हुआ भाव बड़ा गहरा है। देशभक्ति उनका आलम्बन है। बच्चे केवल प्रतीक मात्र हैं। नीचे उनकी 'गर्वी' नामक गद्य-खण्ड का प्रारम्भिक अंश उद्धृत किया जाता है —

कच्चे मन का यह फन्दा आज फिर मुझ निष्कञ्चन को वत्सल-स्नेह के सूत्र में बाँधने के लिए आ गया है बड़ी प्रतीक्षा के बाद

आज तुम्हारा अनुराग-स्निग्ध लिफाफा मिला। राखी-पूर्णिमा आयी और सूनी ही चली गयी। दिन पर दिन बीतते गये। मैंने समझा कि चिर-पोषित मञ्जुल भाव अब शायद विस्मृति की काली चादर ओढ़ कर सो गया है। दिल में तड़पन थी, वेदना थी, अन्यमनस्कता थी, विषाद भावना थी। पर, मेरे मुख पर सूखी हँसी थी, उदासीनता का बहाना था। इतने ही में एक दिन, जगत्पति के अकल्पित आशीर्वाद की तरह, तुम्हारा ललित-लिफाफा मेरे निराश किन्तु अति प्रतिचित, हाथों पर आन गिरा। पहिना रानी, सच कहता हूँ, उस समय यह मेरा मूर्च्छ हृदय कोलाहल कर उठा। तुम क्या जानो, पगली, कि तुम्हारे 'प्रिय भैया' के हृदय में कौन सा महासागर लहराया करता है? हिये के कपाट खोलकर अन्तस्तल का यह प्रचण्ड हाहाकार मैं कैसे दिखलाऊँ? जाने दो, उसकी जरूरत ही क्या है?

मेरे बड़े भाग्य! कि इतनी अवधि के उपरान्त तुम्हें अपने एक नगण्य भाई की याद तो आयी। मैं उलाहना नहीं देता। मुझे उलाहना देने का हक ही क्या है? उपालम्भ तो वह भाग्यशाली दे, जिसे तुम्हारे प्रेम-भाव को अधिकारपूर्वक प्राप्त कर सकने का विश्वास हो। मैं तो सचमुच अपना सौभाग्य समझता हूँ जो छठे-चौमासे तुम्हारे मानस-दिङ्-मण्डल में मेरी छाया पड़ जाती है। मत समझो रानी, कि मैं अपनी वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ हूँ। मेरे पत्र और धन्य [illegible] अपनी भावनाओं का विश्लेषण [illegible]

[illegible]

हिन्दी की शैलियाँ और उनका वर्गीकरण

वर्तमान युग में समालोचना का एक अत्यन्त आवश्यक अङ्ग तुलनात्मक आलोचना है। इसी के अनुसार आजकल की यह एक अनिवार्य प्रथा है कि आलोच्य विषयों की समता और विषमता के आधार पर वर्ग स्थापित किये जांय। हिन्दी वाग्-विदग्धता की प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी इसी सिद्धान्त के अनुकूल हो सकता है। परन्तु इस विषय में चाहे कितनी ही सावधानी की जाय निष्कर्ष असन्दिग्ध नहीं हो सकता। आलोचक का दृष्टिकोण वाग्विदग्धता की जिस खूबी से प्रभावित हो कर व्याख्या करने बैठेगा उसी खूबी का अतिशय दूसरे गुणों और दोषों को अवश्य दबा देगा। समूची शैली के समूचे गुण-दोष सहसा किसी एक अकेले को स्पष्ट हो जांय यह जरूरी नहीं। अतएव वर्ग-स्थापना की विधि एक ओर लेखक की निजी धारणा हो सकती है और दूसरी ओर उसमें एकाङ्गीपन हो सकता है। तो भी आलोचना-विधान को मार्ग-प्रदर्शन के लिए वर्गीकरण की प्रथा बुरी नहीं होती। परवर्ती विवेचक भूली हुई खूबी, छिपे हुए दोष को कभी न कभी निकाल ही लेंगे।

द्विवेदी वर्ग

महावीरप्रसाद द्विवेदी [illegible] के एक वर्ग के जन्मदाता [illegible] हैं। उनमें तीन प्रकार की शैलियां स्पष्ट दिखाई देती हैं उनको पृथक्-पृथक् [illegible]

[illegible]

विद्यालङ्कार [illegible] विद्यालङ्कार [illegible] वाजपेयी [illegible]

गुप्त, रायबहादुर हीरालाल चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, बनारसीदास और मिश्रबन्धु इत्यादि महानुभावों में इस शैली के दर्शन होते हैं।

महावीरप्रसाद की दूसरी शैली रसात्मक भाषा में कुछ लम्बे लम्बे वाक्यों में दिखायी देती है। इसमें चलताऊ उर्दू के शब्द भी हैं और तत्सम संस्कृत के शब्द भी। इस शैली में जहाँ कहीं व्यङ्ग किया गया है तो उसका माधुर्य नष्ट नहीं हुआ। यह शैली गुदगुदा देती है, विपक्षी को भी तिलमिला नहीं देती। यह शैली अधिकतर व्याख्या लिखने के लिए और कहीं-कहीं कहानियाँ लिखने के लिए प्रयोग की गयी है। इस शैली के सबसे श्रेष्ठ उपासक गणेशशङ्कर विद्यार्थी थे। उनके हाथ में पड़ कर चाहे इसमें व्याकरण का उतना कड़ा अनुशासन न माना गया हो जितना द्विवेदीजी के हाथों में इसे मानना पड़ता था, परन्तु इसमें अधिक वेग, अधिक ओज और अधिक सजीवता अवश्य आ गयी।

गणेशशङ्कर ने इसे टीका-टिप्पणी का माध्यम बनाकर इसमें आघात-क्षमता का अधिक सन्निवेश किया। पालीवाल ने अपनी शैली में गणेशशङ्कर की आघात-क्षमता को और बढ़ा कर स्वीकार किया, परन्तु वे उनकी सरसता और रागात्मिकता न ला सके। बालकृष्ण ने दोनों पक्षों को समुन्नत किया। कोमलता इतनी बढ़ी कि उनकी शैली में कोई उनको उनके विषय का अनन्य भक्त कह सकता है और आघात-क्षमता इतनी बढ़ी कि वे द्विवेदी जी की तीसरी शैली को जिसका आगे जिक्र किया जायगा, अपनाते हुए दिखायी देते हैं।

अपनी शैली में प्रयाग के प्राचीन 'भविष्य' के सम्पादक तथा 'भारत में अङ्गरेजी राज्य' के लेखक सुन्दरलाल भी गणेशशङ्कर की शैली के ही समकक्ष हैं। कृष्णकान्त की शैली में सरसता भी है और जागरूकता भी। व्यङ्ग बहुत शिष्ट और सीमित है। उसमें द्विवेदी और प्रेमचन्द्र की शैलियों के सम्मिलित गुण दिखायी देते हैं।

द्विवेदी जी के तीसरे वर्ग में वह शैली आती है जिसमें उनका उग्र

एक ओर उर्दू का प्रवाह और दूसरी ओर संस्कृत की कोमलता को लेकर वियोगी हरि की शैली खड़ी हुई और उनकी निजी सरसता और

वियोगी हरि वर्ग

अनुपम काव्य-ज्ञान से मिलकर वह बिना छन्द की कविता के रूप में विकसित हुई। कहीं-कहीं बड़े-बड़े संस्कृत पदों से लद कर भी वह व्यङ्ग करती हुई चलती है। कहीं-कहीं पर उर्दू-फ़ारसी की चुटीली उक्तियों और शब्दों में सरस कविताओं की लड़ी जोड़ती, इठलाती हुई आगे बढ़ती है। इनकी शैली की मस्ती बालकृष्ण शर्मा में है; परन्तु अवतरणों के अभाव हो जाने के कारण उसमें गद्य-पद्यमयता नहीं होती।

अपनी उर्दूदानी के बल पर प्रेमचन्द्र जी हिन्दी-क्षेत्र में उतरे। हिन्दी-उर्दू के सामञ्जस्य ने उनकी वाग्-विदग्धता को तीन स्वरूप दिये।

प्रेमचन्द्र वर्ग

उर्दू-प्रधान खूब मुहावरेदार शैली। संस्कृत शब्दों से सुशोभित कोमल सरस शैली तथा दोनों का सामञ्जस्य स्थापित करनेवाली शैली। अन्तिम शैली में ही उनके तमाम ग्रन्थ हैं। परन्तु कहीं-कहीं पर एक ही कहानी में तीनों शैलियाँ दिखायी देती हैं। पहले वर्ग में 'उग्र' का नाम उल्लेखनीय है परन्तु 'उग्र जी बिलकुल अलग खड़े हुए दिखायी देते हैं। उनमें उर्दूपना केवल कुछ शब्दों और मुहावरों तक ही सीमित रह गया है और इसी सीमा तक अङ्गरेज़ी मुहावरों और शब्दों का भी इन्होंने सन्निवेश किया है। उग्र जी की शैली कहीं हल्की होने के कारण प्रेमचन्द्र जी से नितान्त भिन्न है फिर इसकी प्रेरणा में प्रेमचन्द्र ही हैं।

उग्र जी की समता में इनसे कुछ पहले साहित्यिक जीवन आरम्भ करने वाले जी० पी० श्रीवास्तव की शैली का उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु केवल तरलता वाक्-वैचित्र्य [illegible] में ही इनकी कला का साम्य उपस्थित किया जा सकता है। उग्र जी में व्यंग्यात्मकता का गहरापन है वह श्रीवास्तव में ढूँढने से न मिलेगा। रमाशङ्कर अवस्थी वर्तमान सम्पादक को इनके कुछ छींटे मिल गये हैं। प्रेमचन्द्र की दूसरी शैली

पन हटा परन्तु साथ ही साथ उसमें वाक्कोलाहल बढ़ गया। प्रज्ञात्मक चिंतना के स्थान में रसात्मक दार्शनिकता दिखायी देने लगी। 'आज' सम्पादक विष्णुराव पराडकर उसका रूखापन न निकाल सके, परन्तु शब्द-कोष निर्माण में इनका योग कम नहीं है। रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' में भी श्यामसुन्दरदास की शैली का रूखापन क़ायम रहा; परन्तु रामचन्द्र शुक्ल की शैली की मननशीलता आ जाने से इस कमी का बहुत कुछ परिहार हो गया है। दुलारेलाल भार्गव में शैली विषयक रूखापन पाया जाता है यद्यपि श्यामसुन्दर दास की शैली के और कई लक्षण उनमें नहीं मिलते। श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल की इधर की शैलियाँ परस्पर मिली जुली सी दिखायी देती हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय की पुरानी शैली श्यामसुन्दरदास का अनुकरण समझना चाहिए। नवीन शैली में वे इस वर्ग में नहीं आते। राय कृष्णदास भी इस वर्ग के ही प्रतिनिधि लेखक हैं।

श्यामसुन्दर दास वर्ग

अपनी आलोचनात्मक पुस्तकों की शैली के कारण रामचन्द्र शुक्ल एक नवीन प्रकार की शैली के जन्मदाता हुए हैं, जिसकी समता किसी भी प्राचीन शैली से नहीं की जा सकती। इनकी शैली पेचीदा और सङ्केतात्मक है। इस पर अङ्गरेज़ी शैलियों का काफ़ी प्रभाव है। इनके अनुयाइयों में उनके शिष्य कृष्णशङ्कर शुक्ल, जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, काशीप्रसाद आदि स्पष्ट उल्लेखनीय हैं। प्रयाग के रामकुमार वर्मा भी इसी वर्ग के हैं। नवयुवकों में इस शैली का प्रभाव इसलिए बढ़ रहा है कि शुक्लजी की कृतियों का अध्ययन वे विश्वविद्यालयों में करते हैं। रामकृष्ण शुक्ल का शैली गाम्भीर्य भी रामचन्द्र शुक्ल जी का है। नन्ददुलारे वाजपेयी पर श्यामसुन्दर दास का और रामचन्द्र शुक्ल का सम्मिलित प्रभाव है।

रामचन्द्र शुक्ल वर्ग

एक ओर उर्दू का प्रवाह और दूसरी ओर संस्कृत की कोमलता को लेकर वियोगी हरि की शैली खड़ी हुई और उनकी निजी संरसता और अनुपम काव्य-ज्ञान से मिलकर वह बिना छन्द की कविता के रूप मे विकसित हुई। कहीं-कहीं बड़े-बड़े संस्कृत पदों से लद कर भी वह व्यङ्ग करती हुई चलती है। कहीं-कहीं पर उर्दू-फारसी की चुटीली उक्तियों और शब्दों मे सरल कविताओं की लड़ी जोड़ती, इठलाती हुई आगे बढ़ती है। इनकी शैली की मस्ती बालकृष्ण शर्मा में है : परन्तु अवतरणों के अभाव हो जाने के कारण उसमे गद्य-पद्यमयता नहीं होती।

वियोगी हरि वर्ग

अपनी उर्दूदानी के बल पर प्रेमचन्द जी हिन्दी-क्षेत्र मे उतरे। हिन्दी-उर्दू के सामञ्जस्य ने उनकी वाग्विदग्धता को तीन स्वरूप दिये। उर्दू-प्रधान खूब मुहावरे-दार शैली। संस्कृत शब्दों से सुशोभित कोमल सरल शैली तथा दोनों का सामञ्जस्य स्थापित करनेवाली शैली। अन्तिम शैली मे ही उनके तमाम ग्रन्थ हैं। परन्तु कहीं-कहीं पर एक ही कहानी मे तीनों शैलियाँ दिखाई देती हैं। पहले वर्ग मे 'उग्र' का नाम उल्लेख-नीय है परन्तु 'उग्र' जी बिलकुल अलग खड़े हुए दिखाई देते हैं। उनमें उर्दूपना केवल कुछ शब्दों और मुहावरों तक ही सीमित रह गया है और क्री सीमा तक अङ्गरेजी मुहावरों और शब्दों का भी उन्होंने समावेश किया है। उग्र जी की शैली बड़ी हलकी होने के कारण प्रेमचन्द जी से नितान्त भिन्न है किन्तु उनकी प्रेरणा मे प्रेमचन्द ही हैं।

प्रेमचन्द्र वर्ग

उग्र की सनक मे उनसे कुछ पहले साहित्यिक जीवन आरम्भ करने वाले जी० पी० श्रीवास्तव की शैली का उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु केवल तरलता, वाक्-वैचित्र्य, छिछलेपन मे ही दोनों का साम्य उपस्थित किया जा सकता है। उग्र जी में व्यङ्ग्यात्मकता का जो पैनापन है वह श्रीवास्तव मे ढूँढने से न मिलेगा। [illegible] प्रवर्तक वर्तमान सम्पादक को उनके कुछ छींटे मिल गये हैं। प्रेमचन्द के उन्नत शैली

का प्रभाव भगवतीप्रसाद वाजपेयी पर स्पष्ट है। यद्यपि उनका झुकाव अब तीसरी प्रकार की शैली की ओर अधिक है। चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने इस शैली को कोरी संस्कृत सम्मत पद्धति पर घसीट कर निर्जीव कर दिया और वह केवल शब्दों का चमत्कारपूर्ण ढेर रह गयी। तेजरानी दीक्षित, सुभद्रादेवी चौहान, सियारामशरण गुप्त, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', इसी वर्ग में आवेंगे।

तीसरे वर्ग के समकक्ष हिन्दी में बहुतों की शैलियां मिलेंगी। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, जैनेन्द्रकुमार और ऋषभचरण जैन इसी वर्ग में सम्बन्धित किये जा सकते हैं। इन लोगों की शैलियां अधिकांश में कुछ उलट-फेर के साथ प्रेमचन्द से भिन्न नहीं जा सकती हैं; परन्तु अभिव्यञ्जना के मूल मनोभाव एक ही हैं। झांसी के वृन्दावनलाल वर्मा पर भी इसी वर्ग का प्रभाव पड़ा है। आजकल के उनके गद्यखण्ड इस शैली के अपवाद अवश्य हैं। उनमें विचार-सङ्केत चाहे कितना ऊँचा हो, परन्तु शैली की दृष्टि से वे लेखक के उपन्यासों और उनकी कहानियों से बहुत पीछे हैं। उनमें चटकीली सरसता का एकदम अभाव है।

हिन्दी-संसार में अपनी शैली के कारण बिलकुल अलग खड़ा हुआ जो व्यक्ति दिखलायी देता है वह है माखनलाल चतुर्वेदी।

माखनलाल वर्ग

उनकी शैली भूतकाल की चीज नहीं, वह वर्तमान की सौगात है। माखनलाल कला-विहीन कलाकार हैं। स्वाभाविक प्रवाह में उनके चिन्तन के भाव-खण्ड बहा करते हैं। उनकी सारी चिन्तना भावमय और काव्यमय होती है। उनके गद्य में काव्य बहा करता है परन्तु वह वियोगी हरि की शैली की भाँति नहीं। उसमें कोरी तन्मयता, भावुकता, अथवा भक्ति ही नहीं है, उसमें कला की अपूर्व ममता का वाग्-विहार भी है। अतएव, एक-से-एक नये अभिव्यञ्जना के स्वरूप कोई देवता भीतर से ढकेलता जाता है और श्रोता तथा पाठक मुग्ध होकर रह जाते हैं। उनकी शैली दार्शनिक ग्रन्थियों के सुलझाव में भी अपनी काव्य

उङ्गलियों का ही प्रयोग कला के दस्ताने पहन कर करती हैं। इनके अनुयायी वर्ग में इनकी शैली के समकक्ष किसी की शैली नहीं पहुँचती। वैसे विनोदशंकर 'व्यास', श्रीकृष्ण प्रेमी, मोहनलाल महतो थोड़ा बहुत वैसा ही लिखने का प्रयास करते हैं। अभिव्यंजना सम्बन्धी नये स्वरूपों का स्वाभाविक उत्कर्ष, बालकृष्ण शर्मा में भी है, परन्तु वह एक दूसरे प्रकार का है।

माखनलाल की संकेतात्मकता और कला को पकड़ निराला ने प्रबन्ध-रचना में उस शैली को चलाना चाहा, परन्तु उनके प्रबन्ध पहेली होकर बुझौव्वल के प्रश्नों को हल करने लग गये। उनकी कहानियों और उपन्यासों की भाषा में टूट-टूट, नवीनता के लक्षण मिल जाते हैं, परन्तु उनकी शैली में स्थिरता का अभाव है। उनकी शैली में चक्कर काटने की एक दूषित प्रवृत्ति है। प्रबन्धों में एक साधारण विचार की अभिव्यक्ति में उन्हें एक बड़ा लम्बा चौड़ा रास्ता तय करना अच्छा लगता है और कभी-कभी वे केवल सूत्रों में बात करना पसन्द करते हैं।

शैलियों का ऊपर दिया हुआ वर्गीकरण एक अधिकारी की जाँच का फल नहीं है। इसे एक विद्यार्थी के अध्ययन का निजी निष्कर्ष समझना चाहिए। [illegible]

उपसंहार [illegible]

[illegible]

हिन्दी गद्य की वर्तमान प्रगति पर एक दृष्टि

का विधान कभी नहीं हुआ था। "इस साहित्योदय की अरुणिमा हमे भारतेन्दु काल मे ही मिल गयी थी। उस समय अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। किन्तु मनोरञ्जक साहित्य का सृजन ही उस काल की प्रचलित धारा थी। शास्त्रीय विषयों का उन्नयन नहीं देख पड़ा था। शीघ्र ही अङ्गरेजी शिक्षा के प्रसार से हिन्दी गद्य विस्तृत होने लगा। साहित्य की विभिन्न विचार-धाराएं हिन्दी मे अवतीर्ण हुईं और कुछ ही समय मे शिक्षा, अर्थशास्त्र, इतिहास, भ्रमण, उद्योग-व्यापार, चिकित्सा, कृषि, भौतिक-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान आदि अन्यान्य क्षेत्रों की चर्चा हिन्दी गद्य में होने लगी। स्त्री-शिक्षा और धर्म-सम्बन्धी पुस्तके तथा उपदेशात्मक सामग्री मे सबसे पहले गद्य लिखा गया। इस काल में हिन्दी गद्यकारो को संस्कृत, फारसी, अरबी के अतिरिक्त अङ्गरेजी तथा देश की इतर प्रान्तीय भाषाओं और साहित्य से अभिज्ञ विद्वान मिले।

उपन्यास

कहानी और उपन्यास पहले पहल नानी-दादी की रोचक कहानियों को लेकर खड़े हुए, और फिर बालकों की जिज्ञासा की चीज न रहकर बड़ो की मनोविनोद की वस्तु बने। इस मनो-विनोद के मूल मे भी जिज्ञासा आबद्ध थी। इसके स्वरूपो मे विभिन्नता आ गयी थी।। अपने अपने मनोविनोद की अपनी अपनी निजी कथाएँ दिखायी देने लगी थी। कुछ [illegible] की कथाएँ [illegible] गाथाओं के रूप मे [illegible] साहित्य [illegible] माननेवाले पुण्यात्माओं ने [illegible] कथाओं को नैतिक-[illegible] मे भी लोगो का [illegible] था। काल के [illegible] कहानियों [illegible] का [illegible]

कौशिक जी की 'भिखारिणी' और 'मा' भी सुन्दर हैं। 'मा' अपनी ढङ्ग की बड़ी अनूठी रचना है। जैनेन्द्रकुमार की 'फाँसी' चतुरसेन शास्त्री की 'अमर अभिलाषा' दीनानाथ मिश्र का 'निरुद्देश्य' प्रतापनारायण श्रीवास्तव की 'विदा', गिरिजादत्त 'गिरीश' का 'बाबू साहब', शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' भी अच्छे उपन्यास हैं।

चरित्र-चित्रण-प्रधान, सम्वाद-प्रधान तथा घटना-प्रधान सभी प्रकार के उपन्यास आज रचे जा रहे हैं। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी विषयों पर उपन्यास का विषय सुगमता से बनाया जा रहा है। प्रेमतत्व का मार्मिक गवेषणा मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से आज कल के उपन्यासों में मिलती है। रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से एक ऐसा दल उपन्यास और कहानी लेखकों में उदय हो गया है जो अभिव्यञ्जना में मौलिकता के साथ साथ अन्तर्द्वन्द्व की अच्छी झाँकी दिखाता है और घटनाओं को गौण स्थान देकर मनोभावों और मनोविकारों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निदर्शन कराना अपनी कला का अनिवार्य अङ्ग समझता है। इस सबके प्रभावों और उत्थानों का अच्छा प्रतिबिम्ब उपन्यासों और कहानियों में दिखाई देता है।

यह कहानियों की प्रधानता का युग है। प्रेसों की बाढ़ [illegible] की साहित्यिक दार्शनिक राजनीतिक और सामाजिक पत्रों की बाढ़,

चित्रण, आदर्श घटनाचक्र,—जिसके विस्तार में अलौकिक स्वरूपों का भी सन्निवेश आ जाता है—और यथार्थ घटना-चक्र के सम्बन्ध में आज की अच्छी कहानी में कोई टीका टिप्पणी नहीं कर सकता। वर्तमान समय के सारे मनोभावों, विचारों और उत्पीड़नों का स्वरूप कहानियों में सुरक्षित है। इस युग की कहानियों में युग का पूरा प्रतिनिधित्व मौजूद है।

रवि बाबू और शरद बाबू के प्रभाव से हिन्दी कहानियों में दो वर्ग स्पष्ट दिखायी देते हैं—मनोभाव-प्रधान और कथानक-प्रधान कहानियाँ। रविबाबू के अनुयायी कथानक के तारतम्य पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते। वे मन की तह को खोजकर छोटे-छोटे हल्के और गहरे तथ्यों का स्पष्टीकरण ही अपनी कला का स्वरूप मानते हैं। बाह्य परिस्थिति-विशेष का नाता आन्तरिक परिस्थिति से कैसा है, दोनों का आदान-प्रदान किस प्रकार का है, दोनों के आन्दोलन से कैसे घात-प्रतिघात उत्पन्न होते हैं, इसी का स्पष्टीकरण उनका प्रमुख साधन है। कथानक को वे केवल साधना-सोपान मानते हैं। शरद बाबू के अनुयायी कथानक की सुचारुता की सम्बद्धता को नहीं छोड़ते। विदेशी की कहानियों के अध्ययन से कुछ और तथ्यों को भी हिन्दी कहानी-लेखकों ने लिया है। सबका समन्वय आजकल की अच्छी कहानी में मिल सकता है।

उपन्यास-रचना के साथ-साथ हिन्दी में भी कहानियों का [illegible] हुआ। हिन्दी में [illegible] 'सरस्वती' [illegible] ने लाला पार्वतीनन्दन के [illegible] ही अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में [illegible] फलतः हिन्दी में मौलिक [illegible]

अधिकांश [illegible] चित्र होती है

लेखन को पृथक कला की भाँति लोग अध्ययन करते हैं। कहानी आज कई स्वरूपों में दिखायी देती है।

नाटक

नाटक की वृत्ति उतनी ही प्राचीन है जितनी मनुष्य सभ्यता। नाटकों के स्वरूप हमेशा परिवर्तित होते आये हैं। संस्कृत साहित्य ने काव्य के बाह्य और आन्तरिक स्वरूप के लिए कलापक्ष और भावपक्ष की अभिव्यक्ति दो प्रकार के विभिन्न स्वरूपों में की। महाकाव्य, खण्ड-काव्य, गद्यकाव्य, चम्पू, इत्यादि में काव्य का कलापक्ष अपनी सीमा तक पहुँचा दिया गया और नाटकों में रसात्मकता कूट कूट कर भर दी गयी। दृश्य काव्य और श्रव्य-काव्य का यह विभाजन सजग न था, परन्तु परिणाम यही हुआ। यद्यपि आगे चलकर बीच की मेड़ मिट गयी और यह विभाजन स्थिर न रहा; परन्तु नाटकों की रसात्मकता नष्ट न हुई।

आज दिन भी रसात्मकता नाटकों का अनिवार्य अङ्ग माना जाता है। लेखकों ने ही आरम्भ में नाटकों को भी साहित्य के अन्य विभागों की भाँति एक विभाग मान रखा था। अभिव्यञ्जना-प्रणाली की बहुत सी विधियों में नाटक को एक उत्कृष्ट विधि समझ रखा था।

हृदय का साहित्य-देवता जब गद्य और पद्य दोनों का जामा पहनकर बड़ी दूर तक [illegible] करता है तब नाटक की सृष्टि होती है। दृश्य-काव्य में [illegible] का ही सर्वस्व [illegible] नहीं समझा गया। नाटक भी पठन-पाठन की उत्तम सामग्री समझे जाते थे। अभिनय होने के साथ ही नाटक की कलात्मक और साहित्यिक वृत्ति को कभी नहीं [illegible] यही कारण है कि संस्कृत के कुछ उत्तम से उत्तम नाटक अनभिनेय हैं। वे पढ़ने की वस्तु हैं। [illegible] नहीं [illegible] कलाकार ने अपनी [illegible] और [illegible] विधान में अभिव्यक्त न [illegible] नाटक में अभिव्यक्त किया। हिन्दी में भी इस वृत्ति को [illegible] रहा है।

हिन्दी में नाटक-रचना [illegible] बहुत पहले आरम्भ हो चुकी,

। 'नहुष' 'आनन्द रघुनन्दन.' शकुन्तला' भारतेन्दुजी ने पहले लिखे चुके थे। भारतेन्दुकृत तथा भारतेन्दुकाल के अन्यान्य लेखकों द्वारा ोत. नाटकों का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। हिन्दी के पुराने कों में सत्यनारायण कविरत्न का 'मालती-माधव" और "उत्तर-चरित" अनूदित नाटकों में साहित्यिक गुण हैं। कानपुर के राय देवी द 'पूर्ण' कृत 'चन्द्रकला-भानुकमार नाटक" अपने समय के ाक नाटकों में विशेष प्रतिष्ठित हैं। इसका गद्य-खण्ड भी बहुत र है। किन्तु अभिनय योग्य न होने से उन नाटकों का साहित्यिक केवल पाठ्य-पुस्तकों की तालिका में ही रह गया है। काशी के कृष्ण वर्मा तथा गोपालराम गहमरी ने उपन्यासों के साथ नाटकों भी बङ्गला से अनुवाद किया। रायबहादुर लाला सीताराम ने कृत के कई नाटको का हिन्दी में अनुवाद किया है। इनके अतिरिक्त दी के आधुनिक काल के लेखकों में रूपनारायण पाण्डेय, नाथूराम ी' आदि कुछ सज्जनों ने बंकिम, द्विजेन्द्रलाल राय गिरीश घोष आदि ाटकों का अनुवाद किया है। भारतेन्दु काल में ही अभिनय कला ओर साहित्यक जन आकृष्ट हो चले थे। अतः काशी तथा अन्य नों पर हिन्दी का रङ्गमच भी देखने को मिलने लगा। इन अभिनय ा की ओर योग्य नाटक-लेखकों में विश्वम्भरनाथ 'व्याकुल' ायणप्रसाद 'बेताब' राधेश्याम कथावाचक,' हरिकृष्ण 'जौहर' सीदत्त शैदा' धनीराम प्रेम बेचन शर्मा उग्र' माधव शुक्ल आदि नाम उल्लेख्य है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक' ने भी पारसी ेड कम्पनी के लिए नाटक लिखे।

आधुनिक युग के साहित्यिक नाटककारों में जयशंकर प्रसाद, विन्दवल्लभ पन्त बदरीनाथ भट्ट माखनलाल चतुर्वेदी मैथिलीशरण प्रसिद्धि-प्राप्त लेखक हैं। प्रेमचन्द और उग्र ने भी नाटक लिखे हैं। पा और भावप्रदर्शन की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक उच्च कोटि हैं। माखनलाल चतुर्वेदी का कृष्णार्जुन युद्ध' अभिनय और

उन्नति में ही आंकी जाती है। प्रबन्ध भी कई प्रकार का होता है। विषय की दृष्टि से प्रबन्धों का वर्गीकरण करना मूर्खता है। एक सुई की नोक से लेकर विश्व के विराट् स्वरूप तक, एक प्रबन्ध के विषय हो सकते हैं। अपनी-अपनी रुचि और अपनी-

निबन्ध लेखक

अपनी शक्ति के अनुकूल हम अपने निबन्ध का विषय चयन करते हैं। हमारी निजी शैलियाँ उनमें भेद और उपभेद पैदा कर देती हैं। लेखक का स्वभाव जितना तर्क-सम्पन्न होगा, जितना ही सहृदय होगा उसका प्रबन्ध वैसा ही अच्छा होगा।

निबन्ध-रचना का प्रथम आभास हमें भारतेन्दु-काल में मिला। किन्तु उस समय की प्रबन्ध-रचना, गम्भीर गवेषणापूर्ण विषयों पर न होकर साधारण वर्णनात्मक ढङ्ग की होती थी। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि के लेख्य-विषय रोचक और शैली चमत्कारपूर्ण होती थी। इन निबन्धों से लोगों को विचार-विमर्श का सङ्केत मिला। भाषा का ज्यों ज्यों विकास हो रहा था, उसमें प्रौढ़ता आ रही थी; उसके साथ ही विचार-पद्धति का भी उन्नयन होता गया। विचारों में समीचीनता का प्रकाश हमें सर्वप्रथम महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के समय-समय पर 'सरस्वती' में लिखे निबन्धों में मिला। उनकी 'बेकन-विचार-रत्नावली' तथा गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री का 'निबन्ध-मालादर्श' आदि काल के निबन्ध-संग्रह हैं। ये दोनों निबन्ध-संग्रह, अंगरेजी और मराठी से अनुवादित हैं। द्विवेदी जी के लिखे कई लेख-संग्रह निकले हैं। जैसे सुकवि-संकीर्तन', 'चरित्र-चित्रण', 'अद्‌भुत-आलाप' आदि। ये लेख अत्यन्त साधारण विषयों पर लिखे गये हैं, अथच यह सामग्री मनन-शील नहीं है।

माधवप्रसाद मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त की निबन्ध-रचना का हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं। माधवप्रसाद मिश्र अपने समय के विद्वान और उत्कृष्ट निबन्ध-लेखक थे। बालमुकुन्द गुप्त के 'शिव-

और 'दोहावली' पर भगवानदीन ने सँभल कर लिखा है, और वह अच्छा है। वैसे उनकी टीकाएँ और भाष्य, मनमाना मूल-संशोधन करके या तो 'वाह वाह' ढङ्ग स्वीकार करते हैं या केवल अर्थ दे देते हैं। श्यामसुन्दरदास की 'कबीर-ग्रन्थावली' भी अच्छी समालोचना है। राजबहादुर लमगोड़ा के लेखों में से यदि भावुकता निकाली जा सके तो वे समालोचना के अच्छे उदाहरण हो सकते हैं। रामकृष्ण-शुक्ल की 'प्रसाद की नाट्यकला' और 'आधुनिक हिन्दी कहानियों की भूमिका' अच्छी समालोचनाएँ हैं। रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'कबीर का रहस्यवाद' अच्छा ग्रन्थ है। 'साहित्यालोचन', 'विश्व-साहित्य', तथा 'हिन्दी साहित्य-विमर्श', डाक्टर गङ्गानाथ झा का 'कवि रहस्य', रमाशङ्कर शुक्ल 'रसाल' का 'आलोचनादर्श', तथा रामकृष्ण शुक्ल का 'कवि जिज्ञासा' अच्छे ग्रन्थ हैं। जनार्दन झा 'द्विज' की 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' भी सुन्दर पुस्तक समझनी चाहिए।

बनारस के कृष्णशङ्कर शुक्ल की तीन पुस्तकें आलोचना-क्षेत्र में अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। 'केशव की काव्यकला' में कवि केशव की आलोचना है। ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों की एक अलग आलोचना लिखी गयी है। 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' भी एक अच्छा ग्रन्थ है यद्यपि लेखक की दृष्टि परिमित है तथापि जहाँ तक उसकी पहुँच है उसका अध्ययन सहृदयतापूर्ण है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

भङ्गी नय', 'जन तत्व मीमांसा', 'बौद्ध दर्शन', 'योग दर्शन', 'न्याय दर्पण', 'वैशेषिक दर्पण' आदि उनकी थोड़ी सी पुस्तकें हिन्दी के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

लाला कन्नोमल

उनकी शैली मधुर और प्रसाद-युक्त है। उनके अन्य ग्रन्थ जैसे 'भारतवर्ष के धुरन्धर कवि', 'सामाजिक सुधार', 'बार्हस्पत्य [अ]र्थशास्त्र', 'संसार को भारत का सन्देश', 'धौलपुर नरेश और धौलपुर [रा]ज्य' इत्यादि की भाषा अपेक्षाकृत कठिन, कुछ शिथिल और [स]नद् है। इन्होंने व्याकरण भी लिखे हैं और लगभग सत्रह ग्रन्थ [अं]ग्रेजी में भी लिखे हैं। कन्नोमल ने अकेले ही हिन्दी साहित्य में दर्शन पुस्तकों का ढेर लगा दिया है, इससे उनका नाम अमर रहेगा।

तर्कशास्त्र की ओर भी गुलाबराय का ध्यान बहुत दिनों से आकृष्ट है। आपने पूर्वीय और पश्चिमीय तर्कशास्त्रों का समन्वय करने का प्रयास किया है। इस दिशा में इनके तथा अन्य लेखकों के लेख तथा उनकी पुस्तकें भी निकल रही हैं। इंटरमीडियेट का माध्यम हिन्दी जिस समय से स्वीकार हो जायगा उस समय से अच्छे अच्छे ग्रन्थ देखने में आने लगेंगे।

अर्थशास्त्र, व्यापार और भूगोल

भौतिक सभ्यता के विकास के साथ साथ पेट विज्ञान की [उन्न]ति होना स्वाभाविक है। विश्वविद्यालयों के छात्रों और अध्यापकों को अंग्रेजी पुस्तकों के पठन-पाठन का कम अवकाश मिलते ही उनमें अपनी भाषा में अर्थशास्त्र विषयक सुन्दर ग्रन्थों के लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। यह प्रेरणा कुछ दिनों तक अंग्रेजी भाषा के आधिपत्य से दबी रही, परन्तु बाद में लोगों ने संकोच का परित्याग करके पुस्तकें लिखना आरम्भ किया। आरम्भिक पुस्तकें तो अनुवाद मात्र ही हैं उनमें नवीनता का बहुत कुछ अभाव है परन्तु बाद की पुस्तकों में मौलिकता का स्वरूप दिखायी देता है। तभी से हिन्दी में अर्थशास्त्र की सामग्री

स्त्रियाँ, स्वामी सत्यदेव के भ्रमण-सम्बन्धी लेख, काशी के दो प्रोफेसरों द्वारा लिखी हुई उनकी युरोप चरचा, सेण्ट निहालसिंह के हिन्दी में अनुवादित भ्रमण-सम्बन्धी लेख, भूमण्डल की जानकारी के लिए अच्छी वस्तुएँ हैं।

धार्मिक तथा राजनीतिक साहित्य

धार्मिक मनोभाव भारतवर्ष का चिरन्तन स्थायीभाव है। भारतवर्ष का सारा इतिहास धार्मिक उत्पीड़नों से भरा हुआ है। धार्मिक क्रान्ति ने असहिष्णुता दिखायी है। रक्तपात हुए हैं और भाषा बनी-बिगड़ी है। राजनीति का स्वरूप भी इस देश में लगभग वैसा ही रहा है। गद्य साहित्य का माध्यम भी धर्म और राजनीति के प्रचार में प्रयुक्त हो चुका है।

धार्मिक-साहित्य का उदय बहुत पूर्व हो चुका था। संस्कृत के धर्म-ग्रन्थों का खूब अनुवाद हुआ और हो रहा है। मनुस्मृति-नीति और वैराग्यशतक, गीता, महाभारत, रामायण तथा स्मृतियाँ और संहिताएँ सभी हिन्दी में मिलती हैं। गोवर्धनदास की 'नीति-विज्ञान' एक अच्छी पुस्तक है। लक्ष्मीधर वाजपेयी, चतुर्वेदी द्वारका-प्रसाद आदि विद्वानों ने धर्म सम्बन्धी सरल ग्रन्थ लिखे हैं। इधर सनातनधर्म के स्तम्भ स्वामी दयानन्द ने भी कई धार्मिक ग्रन्थ हिन्दी में लिखकर उसकी श्री-वृद्धि की है। आपके ग्रन्थ अनुपम और शैली मार्मिक और प्रभावशालिनी होती है। बङ्गाली होने पर भी श्री स्वामी जी का हिन्दी पर अद्भुत अधिकार है। इधर अछूत आन्दोलन के खण्डन-मण्डन में हिन्दी में अच्छे लेख निकल रहे हैं, महात्मा गान्धी का हरिजन पत्र भी विचारों [illegible] की सहयोगिता में अच्छे-अच्छे लेख लिखने में सफल हुआ है

राजनीतिक लेखकों का इस युग में [illegible] दिखायी देता है, देश की परिस्थिति ही ऐसी है कि राजनीति विद्वानों के लिए विशेष महत्त्व रखती है। वास्तव में हिन्दी की जो कुछ भी उन्नति इस

को, एक सच्चा इतिहास-लेखक उपेक्षा नहीं कर सकता।

अब वह समय आ गया था जब अँगरेजी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की दिनोदिन होने वाली उन्नति देखकर कुछ हिन्दी-प्रेमियों के मन में यह विचार उठने लगे थे कि हिन्दी द्वारा वैज्ञानिक विषयों के ज्ञान का प्रचार सुलभ, शीघ्र और प्राकृतिक होगा। इन मनचले साहित्यिकों को इस विषय की सारी कठिनाइयों का ही अनुभव नहीं था वरन् वे उन लोगों के मजाक की भी उपेक्षा करते थे जिनकी राय में विज्ञान जैसी नियत और नियमित विद्या का प्रचार भारतीय भाषाओं द्वारा होना असम्भव था।

विज्ञान परिषद्
प्रयाग

अपनी इसी लगन को कार्य रूप में परिणत करने के लिए प्रयाग में अप्रैल १९१४ में विज्ञान परिषद् स्थापित हुई और 'विज्ञान' पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया गया। इसके प्रधान सम्पादक डा० गंगानाथ झा, पं० श्रीधर पाठक, तथा राय बहादुर लाला सीताराम बनाये गये। इस समय विज्ञान के प्रमुख लेखकों में रामदास गौड़, डाक्टर बी० के० मित्र, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, प्रेमवल्लभ जोशी, निहाल करण सेठी, गोपाल स्वरूप भार्गव, गंगाशङ्कर पचौली, डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, गोपाल नारायण सेन सिंह, शङ्करराव जोशी, सालिगराम भार्गव तथा शालिग्राम वर्मा मुख्य थे। विज्ञान-परिषद् ने रामदास गौड़ और सालिगराम भार्गव की विज्ञान-प्रवेशिका भाग १, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव का विज्ञान-प्रवेशिका भाग २, प्रेमवल्लभ जोशी का 'ताप' तथा सालिगराम भार्गव का चुम्बक नाम के ग्रन्थ प्रकाशित किये।

इन ग्रन्थों का अधिकांश भाग विज्ञान [illegible] के रूप में प्रकाशित हो चुका था। इसी बीच में निहालकरण सेठी ने प्रकाश-सम्बन्धी, शालिग्राम वर्मा ने ध्वनि-शास्त्र-सम्बन्धी तथा सालिगराम भार्गव ने विद्युत-शास्त्र-सम्बन्धी लेख-मालाएँ प्रकाशित करायीं परन्तु कई

की, एक सच्चा इतिहास-लेखक उपेक्षा नहीं कर सकता।

अब वह समय आ गया था जब अँगरेजी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की दिनोदिन होने वाली उन्नति देखकर कुछ हिन्दी-प्रेमियों के मन में यह विचार उठने लगे थे कि हिन्दी द्वारा वैज्ञानिक विषयों के ज्ञान का प्रचार सुलभ, शीघ्र और प्राकृतिक होगा। इन मनचले साहित्यिकों को इस विषय की सारी कठिनाइयों का ही अनुभव नहीं था वरन वे उन लोगों के मजाक की भी उपेक्षा करते थे जिनकी राय में विज्ञान जैसी नियत और नियमित विद्या का प्रचार भारतीय भाषाओं द्वारा होना असम्भव था।

अपनी इसी लगन को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए प्रयाग मे अप्रैल १९१४ से विज्ञान परिषद् स्थापित हुई और 'विज्ञान' पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया गया। इसके प्रधान सम्पादक डा० गंगानाथ झा, पं० श्रीधर पाठक, तथा राय बहादुर लाला सीताराम बनाये गये। इस समय विज्ञान के प्रमुख लेखकों मे रामदास गौड़, डाक्टर बी० के० मित्र, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, प्रेमवल्लभ जोशी, निहाल करण सेठी, गोपाल स्वरूप भार्गव, गंगाशङ्कर पंचौली, डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, गोपाल नारायण सेन सिंह, शङ्करराव जोशी, सालिगराम भार्गव तथा शालिग्राम वर्मा मुख्य थे। विज्ञान-परिषद् ने रामदास गौड़ और सालिगराम भार्गव की 'विज्ञान-प्रवेशिका भाग १' महावीर प्रसाद श्रीवास्तव की 'विज्ञान-प्रवेशिका भाग २' प्रेमवल्लभ जोशी का 'ताप', तथा सालिगराम भार्गव का 'चुम्बक' नाम के ग्रन्थ प्रकाशित किये।

विज्ञान परिषद् प्रयाग

इन ग्रन्थों का अधिक भाग 'विज्ञान' मे लेखों के रूप में प्रकाशित हो चुका था। इसी बीच में निहालकरण सेठी ने प्रकाश-सम्बन्धी, शालिग्राम वर्मा ने ध्वनि-शास्त्र-सम्बन्धी तथा सालिगराम भार्गव ने विद्युत-शास्त्र-सम्बन्धी लेख-मालाएँ प्रकाशित करायीं, परन्तु कई

मे भी पूर्ण न हो सकने के कारण, ये पुस्तक रूप मे प्रकाशित नहीं सकी।

इसी बीच मे विज्ञान परिषद ने 'विज्ञान' मे प्रकाशित अनेक मनोरञ्जक तथा उपयोगी लेखो का वैज्ञानिक पुस्तक-माला निकाल कर पुस्तकाकार प्रकाशन किया। इन लेखो मे महावीर प्रसाद श्रीवास्तव की 'गुरुदेव के साथ यात्रा', गोपाल नारायणसेन सिंह की 'शिक्षितो का स्वास्थ्य व्यतिक्रम', गंगाशङ्कर पचौली के 'स्वर्णकारी,' 'कृत्रिम काष्ठ', 'आलू', और 'केला', रामदास गौड की 'दियासलाई और फास्फोरस', त्रिलोकीनाथ वर्मा का 'क्षयरोग', शङ्करराव जोशी के 'फसल के शत्रु', तथा 'वर्षा और वनस्पति', तेजशङ्कर कोचक का 'कपास और भारतवर्ष', शालिग्राम वर्मा का 'पशु-पक्षियो का शृंगार रहस्य,' गोपाल स्वरूप का 'मनोरञ्जक रसायन', निहालकरण सेठी के 'वैज्ञानिक परिमाण', और डाक्टर बी० के० मित्र के 'ज्वर-निदान और शुश्रूषा' उल्लेखनीय है।

पिछले दस वर्षो मे सत्यप्रकाश जी के 'साधारण' और 'कार्बनिक रसायन', 'वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द' तथा 'बीज ज्यामिति' युधिष्ठिर भार्गव का 'सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय है।

स्कूलो के पाठ्य-क्रम-सम्बन्धी वैज्ञानिक पुस्तको मे इण्डियन-प्रेस द्वारा प्रकाशित कृपानन्द भट्टाचार्य का 'भौतिक और रसायन', देवनारायण मुकर्जी का [illegible] कुलदेव सहाय वर्मा का 'सरल रसायन [illegible]' उल्लेखनीय है। हाल ही मे शालिग्राम वर्मा ने [illegible] नामक पुस्तक अनुवादित की है जिसे [illegible] ने प्रकाशित किया है।

इनके अतिरिक्त [illegible] का 'भौतिक शास्त्र' शालिग्राम वर्मा के 'वैज्ञानिक महापुरुष' [illegible] और [illegible] 'मनुष्य के समुद्र पर विजय' और 'आकाश पर विजय' आदि पुस्तक भी उल्लेखनीय [illegible]

वस्तुत: इन हिन्दी संस्थाओ ने विज्ञान-साहित्य की [illegible]

की है. वे हमारी विशेष कृतज्ञता के भाजन हैं। उनका कार्य बड़ा ही दुस्तर रहा है और है। उन्हें अपनी अभिव्यक्ति में उतनी स्वतन्त्रता नहीं है जितनी साहित्य के अन्य स्वरूपों की अभिव्यञ्जना में है। उनकी सब से बड़ी कठिनाई वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद करना है। इस सम्बन्ध में अभी तक हिन्दी-प्रेमी विज्ञान-वेत्ताओं में दो दल रहे हैं। कुछ सज्जनों ने जिनमें 'विज्ञान' पत्र के सम्पादक श्री सत्यप्रकाश जी विशेष उल्लेखनीय हैं यही ठीक समझा कि विज्ञान के पारिभाषिक शब्द संस्कृत धातुओं और शब्दों से गढ़ लेना चाहिए, जिससे हिन्दी की स्वाभाविकता नष्ट न हो। दूसरी ओर विज्ञान के धुरन्धर विद्वान और हिन्दी में विज्ञान विषयक मौलिक लेखक, डाक्टर निहालकरण सेठी पारिभाषिक शब्दों को ज्यों का त्यों हिन्दी में सम्मिलित करने के पक्ष में हैं। दूसरे वर्ग का मत आजकल प्रधानता पा रहा है।

[illegible] हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर विज्ञान-परिषद् के मञ्च से सभापति हीरालाल खन्ना का भाषण श्री निहालकरण सेठी के ही मत का समर्थन करता है। अङ्गरेजी पारिभाषिक शब्दों का ज्यों का त्यों हिन्दी में सम्मिलित कर लेने से हिन्दी में [illegible]

[illegible]

आता है। विद्वानो का जो कुछ निर्णय हो वह हम सबको मान्य होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे उनके सम्मुख मैं दो बातें रखना चाहता हूँ। वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दो का निर्माण राष्ट्रीय दृष्टि से होना चाहिए। विविध प्रान्तो और भिन्न संस्थाओ की सहकारिता के बिना राष्ट्रीय विज्ञान का आदर्श, स्थापित और पूर्ण होना कठिन है। संसार के सब देशो मे सहकारिता से ही ज्ञान की वृद्धि हुई है और हमारे देश मे भी इसके बिना काम न चलेगा। वैज्ञानिक भाषा का मुख्य भाग पारिभाषिक शब्दो का ही होता है। अतएव राष्ट्रीय दृष्टि से यह परमावश्यक है कि प्रान्तीय भाषाओ के वैज्ञानिक शब्द एक से हो। पारिभाषिक शब्दो की एकता के कारण समस्त देशीय भाषाओ मे वैज्ञानिक पुस्तको का समझना और अनुवाद करना बडा सरल हो जायगा। अभी तक किसी भी भारतीय भाषा का वैज्ञानिक साहित्य प्रौढता को प्राप्त नही हुआ है। इसलिए ऐसी अवस्था मे पारिभाषिक शब्दो को एक सा बनाने का प्रयत्न करना उचित ही प्रतीत होता है।"

विज्ञ सभापति ने अपने इस मन्तव्य को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए अपने वक्तव्य मे एक व्यावहारिक सलाह भी दी है। वास्तव मे यदि हिन्दी के पारिभाषिक शब्दो मे राष्ट्रीयता या अन्तर्राष्ट्रीयता का ध्यान न रक्खा गया तो अध्यापकों और विद्यार्थियो के मध्य केवल एक विशेष कठिनाई ही न उपस्थित होगी, वरन विज्ञान के प्रचार मे एक बडी भारी रुकावट पड़ जायगी। यदि हिन्दी साहित्य-लेखक 'थर्मामीटर' के लिए 'तापमापक-यन्त्र' और उर्दू साहित्य-लेखक 'मिकयासुल-हरारत' लिखने लगे तो बेचारे अध्यापक और विद्यार्थियो मे भाषा सम्बन्धी वही अस्तव्यस्तता दिखायी देगा जो बेबीलोनिया के आकाश-चुम्बी स्तम्भनिर्माण के समय राज और मजदूरो मे प्रविष्ट हो गयी थी।

हिन्दी के सभी विज्ञान-साहित्य लेखक इस बात मे एकमत हैं कि वैज्ञानिक पुस्तको की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए,

और विज्ञान के जटिल स्वरूपों को व्यवहार की प्रयोगात्मक-परिधि में बाँधकर उपादेय बनाना चाहिए। विज्ञान में आज जो उत्तमोत्तम पुस्तकें निकल रही हैं उनमें इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है, अतएव वे पुस्तकें उपयोगी और अच्छी सिद्ध हुई हैं। हिन्दी में जितने भी विज्ञान-लेखक हैं उन सब के एक प्रकार से पथ-प्रदर्शक और उन सब में अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति, अध्यापक रामदास गौड़ दिखायी देते हैं।

रामदास गौड़

रामदास गौड़ ने जिस साहित्यिक शैली का विज्ञान के प्रचार में आश्रय लिया है, वह किसी भी इतर विद्वान-लेखक में नहीं दिखायी देती। एक ओर तो आपने हिन्दी साहित्यिकों के लिए काव्य-परिपूर्ण भाषा में अपने विषय को सवाँरा है, दूसरी ओर विषय को इतना सरस, आकर्षक और सर्व-सुबोध बनाया है कि प्रत्येक ज्ञान-परिमाण उससे लाभ उठा सके। उनकी भाषा में अपूर्व प्रवाह है, काव्योपम सरसता है। ऐसी शुद्ध सुसंस्कृत हिन्दी बहुत से हिन्दी-साहित्य के निर्माणकों में भी नहीं मिलती। अनूठी उपमाओं और रूपकों से गुम्फित आपकी शैली पाठकों की अभिरुचि को गुदगुदाती चलती है साथ ही बड़े बड़े वैज्ञानिक तथ्यों को भाषा की चिक्कणता, और सरलता से हृदय तक पहुँचा देती है। देखिये—

सवेरे का सुहावना समय है। पूरब की लाली धीरे धीरे बढ़ते-बढ़ते सारे आकाश मण्डल में फैल गयी। क्षितिज की चादर को उघार सूरज के झाँकने की देर थी कि सारा जङ्गल सुनहरी किरणों से जगमगा उठा। जो हरियाली अभी सन्नाटे के संसार में बेसुध सो रही थी अचानक जाग कर चहचहा उठी। सारे वन में इस जगत के जीवन-प्राण सूर्य देवता की अवाई पर बधाई बजने लगी। ओस की बूंदों ने हरी-हरी पत्तियों के अरघों से ढल-ढलकर पाद्य और अर्घ दिये। नरम-नरम टहनियों ने सुगन्ध वाले कोमल फूल चढ़ाये। आकाश ने आरती

के स्पर्श से ही लोक-प्रियता और एक अद्भुत चमत्कारपूर्ण सरसता मिल गयी है। आपने विज्ञान-साहित्य के निर्माण मे बहुत सी मौलिक पुस्तके चाहे न लिखी हो, किन्तु बहुत से मौलिक लेखक अवश्य उत्पन्न कर दिये। इनके विज्ञान-मण्डल मे विज्ञान-लेखको का एक बड़ा भारी कुटुम्ब है, जिसने हिन्दी मे विज्ञान की अनन्य सेवा की है और कर रहा है। 'विज्ञान' पत्र के सम्पादक के पद से, विज्ञान-मण्डल के सरक्षक रूप मे, और विश्व-विद्यालय मे प्रोफेसर की स्थिति से आपने विज्ञान-विषय की उन्नति का साधन एक मात्र हिन्दी ही बनाया है।

आपने केवल विज्ञान विषयक शतशः लेख ही नही लिखे, 'विज्ञान' पत्र मे वन्दना-रूप मे सैकड़ों कविताएँ भी रची हैं। गर्मी और बरसात पर एक कविता 'विज्ञान' मे प्रकाशित है, 'सभ्यता की पुकार' शीर्षक आपका लेख भाषा की दृष्टि से बड़ा सुन्दर है। रचना को सर्व-सुबोध बनाने के लिए आपने जन्तु-जगत का 'भुनगा-पुराण' शीर्षक लेखो मे सुन्दर विश्लेषण किया है। 'भुनगा-पुराण' की लेखन-शैली बड़ी मधुर और आकर्षक है। इस पुराण का एक खण्ड हम पाठको के विनोद के लिए प्रस्तुत कर रहे है :—

इतनी कथा सुन भुनगादि ऋषि बड़े आश्चर्य मे हो विनीत भाव से बोले "हे भगवान ! यह आपने बड़ी विचित्र बात सुनायी कि जत्रिय देवता अपने शरीर को लम्बा करने लगता है, फिर उसके दो भाग हो जाते है और दोनो अलग व्यक्ति होकर रहने लगते है। इस प्रकार इन देवताओ की सख्या दिन दूनी, रात चौगुनी होती जाती है। यदि यह देवता अपनी इच्छानुसार बढ सकते हैं तो दो या अधिक व्यक्तियो के होने के पहले अपने आकार को बढ़ाते बढाते पर्वताकार क्यों नही हो जाते और ब्रह्माण्ड का अतिक्रम क्यो नही कर लेते ? हे भगवन ! आपने यह बताया कि इनके शरीर पारदर्शी होते हैं, तो आपने अवश्य देखा होगा कि इनके शरीर के भीतर कैसे पदार्थ होते हैं ? क्या क्या अवयव होते हैं ? कैसी कैसी क्रियाएँ होती है ? वह क्या रहस्य है

ेत है ! गौड़ जी ने ज्ञान की घूंटी एक अपूर्व सरलता
ो है ।

ाधार बाहरी प्रयोगशाला है, स्वरूप भौतिक है;
आधार आभ्यान्तरिक धरातल है और इसके
ावनाएं और विचार रहते हैं । इस दृष्टि से काव्य
स्पर विरोध है, परन्तु अटूट चिन्तना दोनों में ही
ान का कोई भी प्रयोग बिना उत्तम चिन्तना के
ता और इसी प्रकार काव्य का कोई भी स्वरूप
ा अनुपम समावेश न हो, उत्तम नहीं कहा जा
इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चिन्तना के बिन्दु
काव्य दोनों रेखाएँ मिल जाती हैं । अतएव वह
रशील है और एक दार्शनिक है, विज्ञान का पण्डित
हो सकता है । रामदास इसी कोटि के व्यक्ति हैं । आप-
ता विज्ञान को काव्य का कलेवर दे देने में अद्वितीय
हैं । इनकी शैली में कोरे काव्य की अलसान का
विज्ञान के रूखेपन से भी वह बिलकुल अछूती है ।
और मार्दव के साथ सरसता-सरलता का घनत्व है ।
ड़ के पश्चात् विज्ञान विषयक अन्य जितने लेखक हैं,
यक्ता नहीं है, और न हिन्दी में विज्ञान-साहित्य के
लिए वैसी पक्की धुन । परन्तु रामदास गौड़ के
वैयक्तिक उज्वल चरित्र ने [illegible] प्रचार की आँधी
[illegible] बना दिय [illegible] हुआ
[illegible] की [illegible] हिन्दी में
[illegible] चट

अपेक्षाकृत उतना भोजन पहुँचा न सकेगा। इसलिए शरीर-यात्रा सध न सकेगी।

हे भुनगानन्दनो, यही बात है कि यह देवता निरन्तर अपने शरीर को न बढ़ाकर अपनी संख्या ही बढ़ाते रहते हैं; और जैसे साधारण प्राणियो की मृत्यु होती है और शरीर छूट जाता है, सड़ गल कर नष्ट हो जाता है, अथवा अन्य प्राणी उसे खा जाते हैं, उस तरह इनके शरीर की दशा नहीं होती। इनका शव कभी होता ही नही। इसको वृद्धि को ही मरण समझना चाहिए। मृत्यु उनके लोक मे उत्पन्न ही नही हुई। यमलोक तो अन्य प्राणियो के लिए बना है। जिस समय पर एक व्यक्ति से दो व्यक्ति हो जाते है, दोनों नयी व्यक्तियॉ होती हैं। पुराना व्यक्ति इस तरह नष्ट हो जाता है कि उसका अत्यन्ताभाव समझना चाहिए।

हे भुनगा नन्दनो, यह देवगण इस प्रकार जरा-मरण से मुक्त, निरन्तर अपनी सृष्टि बढ़ाते रहते हैं। तुमने सुना होगा कि अनेक प्राणी ससार मे ऐसे है जिनका जीवन ससार मे सन्तान उत्पन्न करने तक रहता है। सन्तानोत्पत्ति होते ही वे मर जाते हैं, यही प्रकृति का नियम है। जगतनियन्ता ने सृष्टि को सदा रखने के लिए ऐसी परम्परा बना रखा है कि प्रत्येक प्राणी सन्तान की उत्पत्ति मे सुख मानता है और सन्तान के योग्य हो जाने पर अपना जीवित रहना भी व्यर्थ समझता है। इन देवताओ की दशा, ईश्वर की रचना मे, उनकी इच्छा के अनुरूप है। यह देवता एक मे अनेक होना और अपने को एकदम मिटा देना, अपना परम कर्तव्य समझते है।

हे भुनगानन्दनो, जिसे मृत्यु कहते है वह वस्तुत ससार परम्परा की रक्षक है। यही बात है कि सृष्टि के पालन के साथ साथ मरण भी अत्यावश्यक और अनिवार्य है"।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे देव-जीवन वर्णनो नाम पञ्चमोध्याय।

भाषा शैली मे कैसा सामञ्जस्य है, विनोद और तथ्य कितनी

न्दरता से ओत-प्रोत है! गौड़ जी ने ज्ञान की घूंटी एक अपूर्व सरलता
कण्ठ में उतार दी है।

विज्ञान का आधार बाहरी प्रयोगशाला है, स्वरूप भौतिक है; परन्तु काव्य का आधार आभ्यान्तरिक धरातल है और उसके आलम्बन अमूर्त भावनाएं और विचार रहते हैं। इस दृष्टि से काव्य और विज्ञान का परस्पर विरोध है, परन्तु अटूट चिन्तना दोनों में ही आवश्यक है। विज्ञान का कोई भी प्रयोग बिना उत्तम चिन्तना के सफल नहीं हो सकता और इसी प्रकार काव्य का कोई भी स्वरूप जिसमें चिन्तना का अनुपम समावेश न हो, उत्तम नहीं कहा जा सकता। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चिन्तना के बिन्दु पर विज्ञान और काव्य दोनों रेखाएं मिल जाती हैं। अतएव वह मनस्वी जो चिन्तनशील है और एक दार्शनिक है, विज्ञान का पण्डित होते हुए भी कवि हो सकता है। रामदास इसी कोटि के व्यक्ति हैं। आप-की उच्चदार्शनिकता विज्ञान को काव्य का कलेवर दे देने में अद्वितीय रूप में सफल हुई है। इनकी शैली में कोरे काव्य की [illegible] का बहिष्कार है और विज्ञान के रूखेपन से भी वह बिल्कुल अछूती है। इसमें तरल प्रवाह और मार्दव के साथ सरसता-सरलता का [illegible] है।

रामदास गौड़ के पश्चात् विज्ञान विषयक ग्रन्थ जितने [illegible] हैं, उनमें वह साहित्यिकता नहीं है, और न हिन्दी में विज्ञान-साहित्य के लिए वैसा [illegible]। परन्तु रामदास गौड़ के

विज्ञान विषयक कुछ पुस्तकें

वैज्ञानिक [illegible] ने हिन्दी [illegible] की ओर [illegible]

मौलिक ग्रन्था [illegible]

वा।

ज्योतिष विषय में कुछ स्फुट लेखों के अतिरिक्त मनोरञ्जन-पुस्तक-माला की "ज्योतिर्विनोद" साधारणतया अच्छी पुस्तक है। गणित-ज्योतिष रूखा विषय है, सर्वसाधारण की रुचि उस ओर नहीं है। संस्कृत के ज्योतिषाचार्य हिन्दी लिखने की ओर कम ध्यान देते हैं, और कुछ विद्वानों को छोड़कर वास्तव में वे हिन्दी में अच्छी पुस्तकें लिख भी नहीं सकते। संस्कृत के ज्योतिषियों में प्रयोग-बुद्धि की कमी और साधनों का अभाव है। मान-मन्दिर के यन्त्रों के आधार पर यदि वे चाहें तो मौलिक ग्रन्थों की रचना हो सकती है।

स्कूलों में हिन्दी माध्यम हो जाने के साथ साथ हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों की रचना होना अनिवार्य था, परन्तु जब तक विश्व-विद्यालयों में हिन्दी माध्यम नहीं होता तब तक मौलिक ग्रन्थों के प्रणयन के लिए प्रोत्साहन का द्वार बन्द सा है। स्कूलों में हिन्दी का माध्यम होने पर भी बहुत से अध्यापक अँगरेजी पुस्तकों से ही आज दिन विज्ञान पढ़ाते हैं। वैसे तो बहुत पहले १८६० ई० में विज्ञान की पहली पुस्तक 'सरल-विज्ञान-विटप' नाम से प्रकाशित हुई थी। काशी के पं० मथुरा प्रसाद ने विज्ञान सम्बन्धिनी कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। मुंशी नवलकिशोर ने भी साहित्य-सेवा में अच्छा हाथ बटाया था। सन् १८८३ में आपने रसायन सम्बन्धी एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। लक्ष्मीशङ्कर मिश्र का 'त्रिकोणमिति' विषयक ग्रन्थ भी अब काफी पुराना हो चुका है। परन्तु उनका अध्यवसायपूर्ण उपादेय कार्य 'काशी पत्रिका' का निकालना था। इसने साहित्य के साथ साथ विज्ञान की उन्नति में भी हाथ बटाया। बापूदेव शास्त्री का बीजगणित पुराना होते हुए भी अपने ढंग से आदरणीय पुस्तक था। परन्तु सुधाकर द्विवेदी की गणित सम्बन्धी 'चलन-कलन' तथा 'चलराशि कलन' नामक दोनों पुस्तकें आज भी प्रतिष्ठित समझी जाती हैं। सुधाकर द्विवेदी की भाषा की पाण्डि-त्य के कारण इन ग्रन्थों में आकर्षण नहीं आया है फिर भी भाषा की उत्तमता की दृष्टि से इन पुस्तकों का सम्मान होना स्वाभाविक है। एक पुरानी सी

पुस्तक 'सूर्य-करण-मीमांसा' भी देखने में आयी है, लेखक का नाम मुझे स्मरण नहीं। यह पुस्तक साधारण दृष्टि से अच्छी है। महेश शरण-सिंह ने महात्मा मुंशीराम का प्रोत्साहन पाकर गुरुकुल कांगड़ी की अध्यक्षता में विज्ञान विषयक कई पुस्तकें लिखीं। उधर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने वैज्ञानिक कोष का निर्माण किया। परन्तु विज्ञान सम्बन्धी कार्य को तेज़ी के साथ आगे बढ़ाने का श्रेय प्रयाग के 'विज्ञान परिषद' को ही है। भौतिक और रसायन दोनों भागों में विज्ञान की अच्छी पुस्तकें रची गयी। गत १७ वर्षों से निकलने वाले 'विज्ञान' नामक मासिक-पत्र ही ने क्या कम सेवा की है? सैकड़ों विज्ञान विषय के लेखक और सहस्रों विज्ञान में अभिरुचि रखने वाले पाठक पैदा कर दिये।

इधर प्रयाग के डाक्टर गोरखप्रसाद ने विज्ञान की अच्छी सेवा की है और विद्वानों ने उनका उचित समादर भी किया है। इनकी 'फोटोग्राफ़ी' नामक पुस्तक, जिसका प्रकाशन इण्डियन प्रेस ने किया है, अपने विषय की मौलिक एवं उत्कृष्ट पुस्तक है। इसी प्रकार हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित इनका 'सौर परिवार' सुन्दर चित्रों से समन्वित एक अच्छा ग्रन्थ है। 'सूर्य सिद्धान्त' नामक एक और पुस्तक दो भागों में निकली है विद्वानों ने इसका आदर किया है। संस्कृत और अँगरेज़ी के अनुवाद का [illegible] है। हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित [illegible] 'जन्तु जगत' नामक अच्छा ग्रन्थ है।

विज्ञान विषयक [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
महावीर प्रसाद [illegible]
श्रीवास्तव [illegible] है। [illegible]
रिक [illegible] विज्ञान विषय का [illegible]

की रूढ़ियों के ध्वंस में वैसा ही प्रभाव रखती है। नास्तिकता का प्रतिपादन कड़े तर्क के साथ करते हुए, आप अन्यत्र विज्ञान-प्रचार को महत्व देते हैं। गोकुल जी ने विज्ञान सम्बन्धी काफी लिखा है। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान रघुनन्दन शर्मा ने भी 'अक्षर विज्ञान' नामक एक पुस्तक लिखी है। यह यद्यपि पूर्णरूप से वैज्ञानिक कृति तो नहीं कही जा सकती, किन्तु विज्ञान के उस अङ्ग की पूर्ति का अच्छा प्रयास है।

उपर्युक्त अन्तिम दोनों लेखकों को छोड़कर रामदास गौड़ के बाद जितने विज्ञान विषयक लेखक हुए हैं, सब की भाषा नितान्त सरल और सुबोध है। इनमें प्रज्ञात्मक गुण प्रधान है। हृदय को स्पर्श न करके वह केवल मस्तिष्क को ही तृप्त कर सकती है। हृदय और मस्तिष्क दोनों को लपेट में लाने का गुण केवल गौड़ में है।

इधर हीरालाल खन्ना की भी लेखनी में हमें कुछ साहित्यिकता का आभास मिलने लगा है। यद्यपि खन्ना जी सर्वत्र सरलता और विज्ञान में असाहित्यिकता की दुहाई देते देखे जाते हैं, किन्तु वे स्वतः उतना सरल नहीं लिखते जितनी दूसरों से आशा करते हैं। झाँसी साहित्य-सम्मेलन के विज्ञान-परिषद् के सभापति के पद से दी हुई उनकी वक्तृता का एक अंश देखिये—

"विज्ञान हमें बताता है कि प्रकृति अपने कार्यों में सर्व-व्यापकता का लिहाज रखती है और किसी एक व्यक्ति की कुछ रियायत नहीं करती वरन् उन व्यक्तियों को अपने कार्य साधन का मार्ग बनाती है। प्रत्येक वस्तु चंचल अवस्था में है, बिगड़ने के बाद फिर बनती है और बनने के बाद फिर बिगड़ती है। ऐसी दुनिया में जहाँ प्रत्येक वस्तु मरती है, उसके लिए शोक करना व्यर्थ है।"

अस्तु, यह स्थल कुछ क्लिष्ट चिन्तना के कारण थोड़ा कड़ा हो गया है, ऐसा कहा जा सकता है, किन्तु यदि साहित्यिक भाषा का बलात् बहिष्कार न किया गया होता तो इस गद्य-खण्ड का संघटात्मक गुण नष्ट हो सकता था। खैर सम्भाषण का अन्तिम अंश देखिए—

ग्रन्थो की स्वतन्त्र रचना भी की है। प्रकाशित होने पर आपकी भाषा-शैली की समीक्षा की जा सकेगी।

विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के एक अध्यापक देवदत्त अरोडा की 'धर्म' सम्बन्धी दूसरी अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई है। अकेले चिकित्सा सम्बन्धी हिन्दी मे काफी साहित्यपना है। कुछ मौलिक है और कुछ अनुवाद। वैद्यक कोपो के अतिरिक्त 'चरक' और 'सुश्रुत' सटीक मिलते हैं। 'रसराज' नामक पुस्तक मे रसो के गुण निरूपण मिलेगे। सस्कृत के सभी ग्रन्थो का अनुवाद हिन्दी मे मिलता है। यहाँ पर उनका उल्लेख करके एक लम्बी चौडी तालिका प्रस्तुत करना व्यर्थ है। इस सम्बन्ध मे हरिदास वैद्य का साहस विशेष उल्लेखनीय है। चतुरसेन शास्त्री ने भी वैद्यक सम्बन्धी पुस्तके लिखी हैं। अलग अलग रोगो पर तथा उनके निदानो और औषधियो पर अच्छी अच्छी पुस्तके है। होमियोपेथी और एलियोपेथी की काफी पुस्तके अनुवादित हो गई है। शरीर-विज्ञान सम्बन्धी बहुत सी पुस्तके हिन्दी मे मौजूद है। वैद्यो की अखिल भारतीय सम्मेलन की पत्रिका मे अच्छे अच्छे लेख निकलते है। अन्य मासिक पत्रो मे स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छे अच्छे लेख दिखाई देते है। केदारनाथ गुप्त केशव कुमार कुर इत्यादि कुछ लेखको ने, वैद्य न होकर भी स्वास्थ्य सम्बन्धी तकें लिखी है। लखनऊ के शालिग्राम शास्त्री, प्रयाग के जगन्नाथ द शुक्ल, कानपुर के किशोरीदत्त भी वैद्यक सम्बन्धी पुस्तको के । है। अन्य उच्च कोटि के विद्वानो ने भी वैद्यक-सम्बन्धी पुस्तके कर हिन्दी की सेवा की है। परन्तु चिकित्सा-विभाग मे मौलिक शोध करके लिखने वाले बहुत कम लेखक है। इसी से इस साहित्य की वास्तविक अभिवृद्धि कम हो रही है और केवल अनुवाद हो रहे है। डाक्टर प्रसादीलाल झा अवश्य एक ऐसे लेखक है जिनकी गणना मौलिक लेखको मे की जा सकती है। आपकी सारी कृतियाँ मौलिक, विचारपूर्ण और निजी शोध पर आश्रित है। आपका आयुर्वेद मे

कुछ उससे पैदा ही कर लेता है। कानपुर का 'कानून प्रेस' कानूनी पुस्तकों को हिन्दी में छपाने में काफी उत्साह दिखला रहा है। कानून सम्बन्धी पुस्तकों मे कुछ को चन्द्रशेखर शुक्ल ने स्वयं लिखा है और बहुतों को कानपुर के रूपकिशोर टण्डन एम० ए० एल० एल० बी० वकील से लिखवाया है। रूपकिशोर टण्डन के लिखने का ढङ्ग काफी अच्छा है। कानूनों को समझाने के लिये जैसी सुलझी हुइ भाषा चाहिए, वैसी उनमें है। 'कानून दिवालिया,' 'कान्ट्रैक्ट एक्ट,' 'कानून दादरसीखास,' 'माल की विक्री का कानून'. 'बाल-विवाह निषेध एक्ट', 'ताजीरात हिन्द' तथा 'भारतीय कानून शराकत'. 'कानून दाद-रसी काश्तकारी' रूपकिशोर के लिखे हुए ग्रन्थ हैं। चन्द्रशेखर जी का लिखा हुआ 'हिन्दू ला' है। इसके अतिरिक्ति, 'इन्कमटैक्स एक्ट,' 'जाप्ता फौजदारी' 'डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐक्ट,' 'म्यूनिसिपल एक्ट' इत्यादि और पुस्तके भी मेरे देखने में आई हैं। इन पुस्तकों को निरा निरा अङ्गरेजी पुस्तकों का अनुवाद नही कहा जा सकता। विषय की व्यवस्था के अतिरिक्त व्याख्या भी लेखकों की निजी है। कानूनों का अक्षर अनुवाद स्वाभाविक है। किसी विशेष अङ्गरेजी पुस्तक की कोई एक पुस्तक अनुवाद नहीं कही जा सकती। हाँ, कई पुस्तकों के आधार पर एक पुस्तक अवश्य लिखी गयी है। हाईकोर्ट की नजीरे 'ला जर्नल' नामक पत्र ली गयीं हैं। सारांश यह कि पुस्तके कानून के लिए उपयोगी हैं और ी रियासतो में, जहाँ हिन्दी न्यायालयो मे स्वीकार है, उनकी विक्री होती है। हिन्दी की बढती के साथ साथ अदालतों में जिस घडी ी का साम्राज्य बटेगा उस समय मे हिन्दी पुस्तकों का उचित [illegible]मान होने लगेगा।

जब से स्कूलों मे हाई स्कूल परीक्षा तक हिन्दी का माध्यम स्वीकार हुआ और जब से विश्वविद्यालयो में हिन्दी को उचित स्थान मिला है तब से शिक्षकों का एक वर्ग अच्छी अच्छी पाठ्य पुस्तकें प्रस्तुत करने में सलग्न है। इधर अनेक अच्छी पाठ्य पुस्तकों के दर्शन हुए

साहित्य की उन्नति के लिए निकली और दो वर्षों तक निकल कर बन्द हो गयी। आरा की 'मनोरञ्जन' पत्रिका और कानपुर का 'हिन्दी मनोरञ्जन' पत्र हास्यरस की सामग्री प्रस्तुत करते थे। कौशिकजी के सम्पादन-काल में, जो हास्यरस के एक सिद्ध लेखक हैं, हिन्दी मनोरञ्जन की बड़ी उन्नति हुई। भाषा और साहित्य प्रचार के लिए प्रयाग की 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका', आरा की साहित्य पत्रिका, और लखनऊ का 'नागरी प्रचारक' अच्छे पत्र थे। साहित्य-सम्मेलन पत्रिका का रूप हमेशा बदलता रहा और इसके सम्पादक भी बदलते रहे। आरा की पत्रिका का सम्पादन बृजनन्दन सहाय करते थे। लखनऊ का 'नागरी प्रचारक', रूपनारायण पांडे द्वारा सम्पादित था। 'देवनागर' नागरी वर्णमाला के प्रचार का उद्देश्य लेकर अवतीर्ण हुआ और जब तक यह पत्र निकलता रहा इसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की। गोपालराम गहमरी ने 'समालोचक' नामक एक पत्र अपने सम्पादकत्व में जयपुर में निकाला; बाद में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इसके सम्पादकीय पीठ पर बैठे। यह समालोचना का पहला पत्र था। बाद में कृष्ण विहारी मिश्र ने अपने ग्राम गँधौली जिला सीतापुर में एक पत्र निकाला जिसका नाम 'समालोचक' था। इसके सम्पादक-मंडल में कृष्ण विहारी के अतिरिक्त उनके छोटे भाई विपिन बिहारी और नवल बिहारी भी सम्मिलित थे। इसने बहुत काल तक हिन्दी की सेवा की। हरिभाऊ उपाध्याय ने 'मालव-मयूर' नामक एक पत्र काशी में निकाला यह अपने राजनीतिक लेखों के लिए मशहूर था। ज्ञानमंडल काशी ने अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी 'स्वार्थ' नामक पत्र निकाला इसमें अर्थशास्त्र सम्बन्धी बड़े विवेचना पूर्ण लेख होते थे। बिहार की वैशाली तथा वहां के साप्ताहिक हलधर के कुछ दिनों तक दर्शन हुए थे। ग्वालियर की 'आशा' में भी बड़ी आशा थी। काशी का नवनीत नामक पत्र भी अपनी महत्ता रखता था। प्रयाग के हिन्दी प्रेस के स्वामी रामजीलाल शर्मा ने 'विद्यार्थी' नामक पत्र की संस्थापना करके बहुत [illegible] तक

विद्वान होने में कोई सन्देह नहीं, परन्तु इनकी शैली में ऐसा रूखापन है कि इस पत्र को साधारण जनता नहीं अपना सकती। इसके ठीक विपरीत कानपुर के 'वर्तमान' का हाल है। इसके सम्पादक रमाशंकर अवस्थी को कुछ ऐसे सम्पादकीय हथकंडे मालूम हैं कि धनाभाव होने पर भी और सारे विघ्न-बाधाओं के आने पर भी 'वर्तमान' अबाध रूप से निकलता चला जा रहा है। रमाशंकर की लेखनी में ओज है, मनोविनोद-पूर्ण व्यंग है, तथा साफ सुथरी स्पष्टता है। 'दैनिक-प्रताप' भी बड़ी सुन्दरता के साथ निकल रहा है और इसके अग्रलेखों मे हरीशंकर विद्यार्थी की उज्वल शैली बड़ी स्पष्टता के साथ एक विशेष दिशा की ओर ढल रही है। 'प्रताप' इस प्रान्त का एक अच्छा दैनिक पत्र है। दिल्ली का 'अर्जुन' और लाहौर का 'हिन्दी मिलाप' उत्तर-भारत के लिए हिन्दी-प्रचार का अच्छा कार्य कर रहे हैं। प्रयाग का दैनिक 'भारत' नरमदल के राजनीतिज्ञो का सच्चा पत्र है। कलकत्ते के 'विश्वमित्र', 'लोकमित्र', 'भारतमित्र' अच्छे पत्र कहे जाते हैं। मध्य-प्रदेश के 'लोकमत' का स्थान लेने वाला अभी कोई दूसरा प्रभावशाली पत्र नहीं निकला। अच्छा पत्र होने पर भी 'लोकमत' अधिक दिन तक नहीं टिक सका।

चिकित्सा सम्बन्धी और स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ पत्र पत्रिकाएँ निकलीं, बन्द हुईं और निकल रही हैं। 'रगमच' नामक नाटक सम्बन्धी पहला पत्र कलकत्ते मे निकल रहा है। 'रगभूमि', और 'चित्रपट' सिनेमा-सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि कर रहे हैं। समय समय पर जो राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलन उठ खड़े होते है, उनके प्रचार के लिए कुछ पत्र निकाले जाते है। वे अपना कार्य कर बन्द हो जाते हैं। ऐसे पत्रों की तालिका उपस्थित करना व्यर्थ है। हरिजन आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए 'हरिजन' पत्र के अतिरिक्त मद्रास का 'हिन्दी प्रचारक' अच्छा काम कर रहा है। बर्मा और सीलोन के अतिरिक्त आजकल विदेशों में भी हिन्दी पत्र निकल रहे हैं। आफ्रिका का साप्ताहिक 'हिन्दी' जिसका

पुस्तकों की अनुक्रमणिका

फ

ब

भ

र

ल